मंजरी

स्त्री के मन की

जनवरी, 2016 अंक - 7

वजूद तलाशतीं औरतें

संगठित और असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों की स्थिति

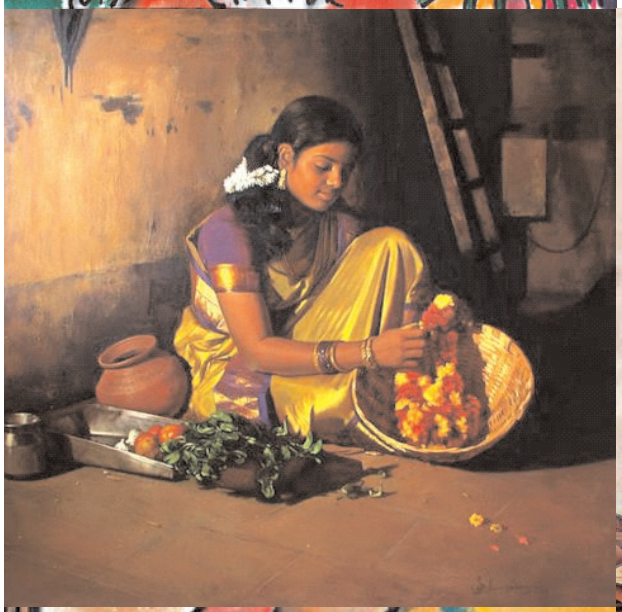

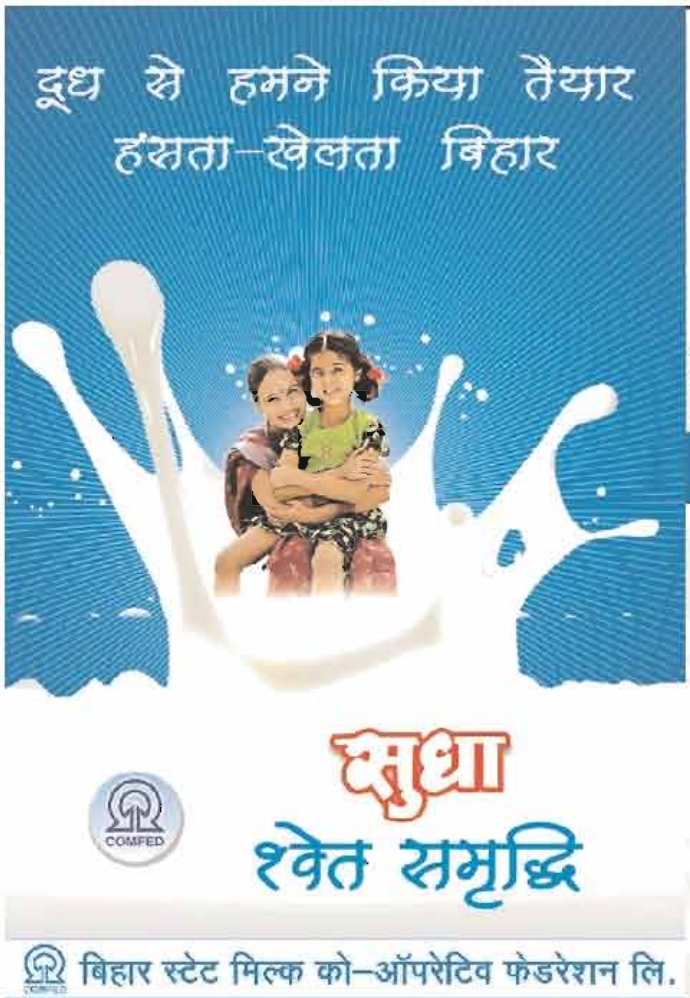
दूध से हमने किया तैयार
हंसता-खेलता बिहार
सुधा
श्वेत समृद्धि
COMFED
बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
-mail comfed.patna@gmail.com,
www.sudha.coop

सुधा
का नया UHT एलेक्स्टर दूध पैक, बिना फ्रिजिंग
रहे अब 90 दिन तक, शुद्ध और ताजा
काटो खोलो पियो
Sudha
100% SAFE
No preservatives added
Preservation 90 Days Without Refrigeration
नजदीकी सुधा बूथ पर उपलब्ध
बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
www.sudha.coop

Sudha
An alliance
with healthy life
Sudha
सेहत, स्वाद, अनगिनत खुशियाँ
COMFED
BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LTD.

ये दूध नही दम है,
पियो जितना कम है।
Sudha
Best Brand Best Milk
सेहत,स्वाद,अनगिनत खुशियाँ
बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
E-mail : comfed.patna@gmail.com
www.sudha.coop

लाखों महिलाओं को
आत्मनिर्भर बनाने
में कॉम्फेड का योगदान
बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवे. दनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

संपादकीय

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र पटना विवि

प्रो. डेजी नारायण
प्रोफेसर, इतिहास, पटना विवि

परामर्श

मनीष कुमार
ब्यूरो चीफ, एन.डी.टी.वी. बिहार

कीर्ति
परियोजना प्रबंधक, महिला सामाख्या, बिहार

डा. शरद कुमारी
समाज सेविका

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
लेखिका

महिलाओं और लड़कियों द्वारा किये जाने वाले बिना वेतन के सेवा कार्य सीधे अर्थव्यवस्था से जुड़े होते हैं और पूरे आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं। अवैतनिक सेवा कार्यों के अंतर्गत आने वाले कामों में अवैतनिक घरेलू कार्यों, जैसे–खाना बनाना, कपड़े धोना, सफाई करना, पानी भरना और ईंधन का जुगाड़ करना आदि–के अलावा बच्चों की देखभाल, बुजुर्गों की सेवा और अपंगों की सुरक्षा करना जैसे काम शामिल हैं जो घरों के भीतर और समुदाय में किये जाते हैं।

हाल ही में आई संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में साफ तौर पर कहा गया है कि ज्यादा बड़े और गैर बराबर सेवा कार्यों के कारण लैंगिक भेदभाव को दूर किया जाना मुश्किल हो रहा है, यह न केवल औरतों के मानवाधिकारों के रास्ते में बाधक है बल्कि कई हालातों में उन्हें गरीबी की ओर भी धकेल रहा है। कई स्वीकृत शोधों के बाद भी अवैतनिक सेवा कार्यों को मान्यता नहीं मिल पा रही है और नीति निर्धारकों व कानून द्वारा लगातार इसकी अनदेखी की जा रही है।

पूरी दुनिया में अवैतनिक सेवा कार्य लैंगिक भेदभाव के कारण बने हुए हैं। बच्चों की देखभाल और घरेलू कामों की जिम्मेदारी महिलाओं और लड़कियों के कंधों पर ही आती है। इसका सबसे ज्यादा असर उन पर पड़ता है जो गरीबी में गुजर बसर करती हैं। ऐसी महिलाएं जिनकी पहुंच सरकारी कार्यालयों और योजनाओं तक नहीं है और जिन्हें अपने गुजारे के लिए निजी स्तर पर सेवाएं लेनी पड़ती है, अवैतनिक सेवा कार्य की वजह से उन्हें अच्छी नौकरी, शिक्षा, स्वास्थ्य, आराम और राजनीतिक भागीदारी तक में नुकसान उठाना पड़ जाता है।

कृषि उत्पादन में औरतें 63 फीसद तक का योगदान देती हैं, उनके हाथों में पूरे परिवार और समाज का हित होता है, वे आम लोगों की रक्षक होती हैं तो पूरे देश की विरासत का बीज वे बोती हैं, फिर भी उनकी गिनती देश के असंगठित क्षेत्र में ही होती है जिनके पास न तो संपत्ति है और न ही आर्थिक सुरक्षा।

भारतीय अर्थव्यवस्था 9 फीसद की रफ्तार से आगे बढ़ रही है लेकिन उसके बावजूद देश की 52 फीसद महिलाएं कुपोषण की जंग लड़ रही हैं। अनाज के भंडार भरे पड़े हैं फिर भी हमारी औरतों को भूखे सोना पड़ रहा है। देश के कृषि क्षेत्र में महिलाएं एक बड़ा कार्यबल हैं। अगर पूरे भारत का आकलन किया जाय तो 71 फीसद औरतें कृषि श्रमिक हैं जबकि केवल ग्रामीण स्तर पर इनकी संख्या 82 फीसद तक हो जाती है। इसका मतलब है कि महिलाएं ही ज्यादातर कृषि कार्य निपटाती हैं जिनमें बोआई, रोपाई, कटनी और ढोना शामिल है। इतना सारा काम करने के बाद वे पाती क्या हैं ? ये बड़ा सवाल है। महिलाएं अनाज के दाम में करीब 60 फीसद की कटौती करा देती हैं, देश की कृषि अर्थव्यवस्था में एक लाख करोड़ का योगदान देती हैं और पूरी अर्थव्यवस्था में दो लाख करोड़ तक का मुनाफा कराती हैं। लेकिन उनके हिस्से का मुनाफा चला जाता है बड़े कॉरपोरेट हाउसों को और वे रह जाती हैं उपेक्षित और खाली हाथ।

भारतीय श्रम बाजार की कई विषम विशेषताएं हैं – महिला श्रमिकों की बेहद कम सहभागिता, लगभग सभी राज्यों में महिला श्रमिकों की संख्या में दृश्य अंतर और असंगठित सेक्टर में महिला और पुरुष, दोनों की बड़ी संख्या। महिला श्रमिकों की सहभागिता पर आधारित जितने अध्ययन हैं वे सब दर्शाते हैं कि कैसे जनसंख्यात्मक चरित्र और शैक्षणिक योग्यता अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी के स्तर को प्रभावित करते हैं। एक अन्य रिपोर्ट में कहा गया है कि भारतीय श्रम बाजार की बाध्यताओं के कारण ही अनौपचारिक रोजगार की संख्या अधिकतम है। उदाहरण के लिए गैर कृषि श्रमिकों में 85 फीसद अनौपचारिक सेक्टर में काम करते हैं। शोधों के मुताबिक देश में मध्य आकार के उपक्रमों की कमी, बहाली कराने वाले फर्मों और उत्पादकता में अंतर के कारण राज्यों के बीच श्रम बाजार अधिनियम में अंतर पाया जाता है। विकासशील देशों और उभरते हुए श्रम बाजारों में भारत सबसे कम महिला श्रम बाजार वाले देशों में से है –विशेषकर नौकरी करने की उम्र में बेरोजगार महिलाओं के मामले में।

हमारी बात

वर्ष 2012 में 33 फीसद संख्या के साथ भारत में महिला श्रम बल ग्लोबल औसत 50 फीसद और पूर्वी एशिया के औसत 63 फीसद की तुलना में बेहद कम है। 2014 के अंत तक करीब 1.26 बिलियन जनसंख्या के साथ भारत दुनिया का दूसरा सबसे ज्यादा आबादी वाला देश है। इसके मुताबिक महिला कामगारों की संख्या केवल 33 फीसद होने का मतलब है कि काम करने योग्य 380 मिलियन महिलाओं में से महज 125 मिलियन महिलाओं को ही काम मिल रहा है या वे वर्तमान में काम कर रही हैं। इतना ही नहीं भारत में महिला और पुरुषों के बीच काम करने को लेकर अंतर, जो कि 50 फीसद तक है, जी–20 देशों में सबसे ज्यादा है। इसके अलावा वर्ष 2004–05 से लेकर अब तक देश में महिला कामगारों की संख्या में लगातार गिरावट आई है। ऐसे में यदि देश की युवा आबादी का लाभ उठाना है तो न केवल ज्यादा से ज्यादा महिलाओं को श्रम बाजार में लाना होगा बल्कि संरचनात्मक सुधारों के द्वारा अधिक रोजगार पैदा करने के उपाय भी करने होंगे।

केन्द्र सरकार में रहे पूर्व सचिव के.बी. सक्सेना कहते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण किसका रहे, इस सवाल को लेकर हमारे समाज में बड़ी उथल–पुथल है। राज्य खेती की परिधि से लोगों को बाहर करने की हड़बड़ी में हैं। उनके मुताबिक संसाधनों का व्यवसायीकरण करने की मूर्खतापूर्ण कोशिश की जा रही है। श्री सक्सेना ने लोगों से अपील की कि वे प्राकृतिक संसाधनों से पूरे समाज को जोड़ने के संघर्ष में साथ आएं, खासकर महिलाओं को। वो जंगल ही हैं जो आदिवासी महिलाओं को परिवार और समाज में एक पहचान देते हैं।

कृषि और भूमि से जुड़े अन्य कार्यों में महिलाओं का योगदान लगातार बढ़ रहा है लेकिन फिर भी वे आज तक हाशिये पर ही हैं। उनका भूमि पर अधिकार नहीं होता। ऐसे में यदि दूसरा कृषि आंदोलन खड़ा करना है तो महिला किसानों को कृषि संबंधी विकास योजनाओं के केन्द्र में लाना होगा और यही समय की मांग है। चूंकि अवैतनिक सेवा कार्य मानवाधिकार से जुड़ा मामला भी है इसलिए इसके प्रति सोच को बदलना होगा। महिलाओं और लड़कियों द्वारा किये जाने वाले अवैतनिक सेवा कार्यों को मान्यता देने के लिए नीतियां बनानी होंगी और इन कार्यों का पुनः बंटवारा करना होगा, यानी स्त्री से पुरुष और परिवार से समुदाय तथा राज्य तक। तब जाकर यथार्थ लैंगिक समानता की नींव पड़ेगी।

नीना श्रीवास्तव

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

आर्थिक सहयोग

सुधा डेयरी
सेज पब्लिकेशन
बंसल ट्यूटोरियल, पटना
द ऑफसेटर, पटना
जीवक हार्ट हॉस्पीटल, पटना
केनरा बैंक
भूषण इंटरनेशनल, पटना
हॉस्पिटो इंडिया, पटना

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612-2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

© इक्विटी फाउंडेशन

अतिथि संपादक

सृजन सौ मील समुदायों का

पद्मश्री इला आर. भट्ट

इला रमेश भट्ट एक गांधीवादी, सामाजिक कार्यकर्ता और 'सेल्फ इम्प्लाएड वीमेन एसोसिएशन ऑफ इंडिया' (सेवा) की संस्थापक हैं। वे इसके स्थापना काल 1972 से लेकर 1996 तक महासचिव रहीं। पेशे से वकील रहीं इला भट्ट ने को–ऑपरेटिव, माइक्रो फाइनांस, अंतरराष्ट्रीय श्रम और असंगठित क्षेत्र की महिलाओं के अधिकारों के लिए काम कर विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाई है। इन्हें 1977 में प्रतिष्ठित रेमन मैग्सेसे अवार्ड और 1984 में राइट लिवलीहुड अवार्ड से सम्मानित किया जा चुका है। इसके अलावा इन्हें देश के सम्मानित पद्मश्री (1985) और पद्म भूषण (1986) से भी नवाजा जा चुका है।

गांधी जी स्वराज की बात करते थे। आर्थिक विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त जो स्थानीय नियंत्रण और स्थानीय रोजगार वाले क्षेत्रों में लागू होता था। आज भविष्य के बारे में बात करती हूं तो मुझे भी लगता है कि आम आदमी को स्थानीयता की जरूरत है। इसलिए यहां मैं अपने '100 मील के सिद्धांत' के बारे में बताना चाहती हूं जिसकी जड़ें भोजन की पारिस्थिकी में से निकली हैं और जिनका आज बुरी तरह अतिक्रमण किया जा रहा है।

100 मील का सिद्धांत

मैं लोगों को बताना चाहती हूं कि हमारी छह सबसे मूलभूत जरूरतें हमारे पास सौ मील के दायरे में मौजूद स्त्रोतों से पूरी की जा सकती हैं। ये मूलभूत जरूरते हैं भोजन, आश्रय, वस्त्र, प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएं और प्राथमिक बैंकिंग। सौ मील का यह सिद्धांत स्थानीयता, आकार और आजीविका को दायरे में लाते हुए विकेन्द्रीकरण का ताना–बाना बुनता है। आजीविका के लिए पदार्थ, उर्जा और ज्ञान के तौर पर जिन चीजों की जरूरत होती है वे सब हमारे आस–पास ही मौजूद हैं। बीज, मिट्टी और पानी के रूप में ज्ञान हमारे बिल्कुल पास है और उन्हें पहचानने की जरूरत है। इसी तरह सुरक्षा भी स्थानीय खोजों से ही मिलती है न कि कहीं दूर से हमारे पास पहुंचती है। जरूरत है तो हमें उस दुनिया से बाहर निकलने की जो लोगों को वो खाने से रोकती है जो वे उपजाते हैं और वो उपजाने से रोकती है जो वे खाना चाहते हैं। इस वजह से उनका अपने उत्पादों और अपनी खुराक पर से नियंत्रण खो चुका है और वे एक ऐसे सिस्टम का हिस्सा बन गए हैं जहां नतीजे दूर बैठे लोगों द्वारा तय किये जाते हैं और जिनकी इसमें न तो कोई रुचि होती है और न ही नियंत्रण।

हमारा अगला बिंदु जुड़ा है समग्र कार्य से। हमने देखा है कि कई समाजों में जहां कामों को समुदायिक जीवन का हिस्सा माना जाता है, खासकर महिलाओं के मामले में, तो वे अधिक संतोषजनक और रचनात्मक रूप में सामने आते हैं। विकेन्द्रीकृत उत्पादन से समुदायों को अपने उत्पादों और उसके इस्तेमाल पर ज्यादा नियंत्रण प्राप्त होता है। इसका मतलब ये हो सकता है कि उत्पादन प्रक्रिया का एक हिस्सा केवल अपने इस्तेमाल या फिर लेन–देन के लिए रहे। हमने देखा है कि उत्पादन से जुड़े स्थानीय संगठन वहां की संस्कृति से ज्यादा अच्छी तरह से जुड़ पाते हैं और इस तरह वे विकास के लिए सतत् और समग्र दृष्टिकोण अपना पाते हैं। इसके अलावे स्थानीय उत्पादन और वितरण से अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका भी ज्यादा मजबूत हो जाती है।

महिलाओं के ज्यादातर काम अवैतनिक होते हैं और उनका महत्व परिवार के लिए होता है। इसके साथ–साथ सामुदायिक कार्य जैसे सामाजिक संबंधों को बनाए रखने का काम भी उनके ही जिम्मे होता है। ऐसे में आर्थिक विकेन्द्रीकरण दो तरह से महिलाओं के लिए लाभप्रद हो सकता है। पहला, यह स्थानीय श्रम और बाजार को मजबूती देगा और महिलाओं के लिए स्थानीय बाजारों तक पहुंच को आसान बनाएगा। दूसरा, यह अवैतनिक कामों का महत्व बढ़ाएगा और उन सभी सामुदायिक और सेवा आधारित कामों को तरजीह देगा जो समाज की निरंतरता को बनाए रखने के लिए जरूरी हैं।

यहां दी गई दलीलों का यह मतलब कतई नहीं लगाया जाना चाहिए कि स्थानीय समुदायों को वृहद समाज से अलग कर देना चाहिए। बल्कि इसके विपरीत स्थानीय समुदायों को तो वृहद बाजारों से और ज्यादा जोड़े जाने की जरूरत है ताकि उत्पादों का वितरण बढ़े और सेवाओं व दक्षता को और अधिक मजबूती मिल सके। यहां जो सुझाव दिए जा रहे हैं उनका तात्पर्य उत्पादन और निवेश की संरचनाओं में मौजूद असमानता का प्रतिकार करना है जो स्थानीय अर्थव्यवस्था को क्रमशः निम्नस्तरीय बल्कि नग्न बनाते जा रहे हैं।

गौर कीजिए

2011 की जनगणना के मुताबिक, देश की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की हिस्सेदारी पुरुषों के 53.26 फीसद के मुकाबले केवल 25.51 फीसद है।

अतिथि संपादक

'सेवा को–ऑपरेटिव बैंक' स्थानीयता और राष्ट्रीयता के बीच गतिशीलता को बनाए रखने का अच्छा उदाहरण है। गरीब महिलाओं का अपनी पूंजी पर अधिकार होता है लेकिन वे इसका इस्तेमाल रोजगार जनक वितरण व लाभांश के लिए करती हैं और इस तरह वृहद बाजारों तक अपनी पहुंच को आसान बनाती हैं। वहीं दूसरी ओर, 'सेवा बैंक' रिजर्व बैंक की वित्तीय और नियामक प्रणालियों के माध्यम से देश के अन्य बड़े बैंकों से भी जुड़ा है और उनके साथ वित्तीय व बैंकिंग लेन–देन करता है।

पिछले कुछ वर्षों में जहां आर्थिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में काम बेहद धीमी गति से हुआ है तो वहीं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के लिए हड़बड़ी दिखाई गई। उदाहरण के लिए, 1992 के संविधान संशोधन द्वारा गांव और नगर स्तर पर चुने गये स्थानीय निकायों को ज्यादा शक्ति देने की बात की गई थी। इसमें कहा गया था कि संविधान को पंचायती राजतंत्र को स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। लेकिन व्यवहार में क्या हुआ! स्थानीय और ग्रामीण निकाय राज्य सरकारों की इच्छा से भंग किये जाने लगे और चुनाव तो दशकों तक नहीं कराये गये। ग्रामीण निकायों के पास अपने कामों को पूरा करने के लिए बेहद सीमित मात्रा में फंड थे तो स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य आधारभूत विकास कार्यक्रमों पर या तो नौकरशाहों या फिर राज्य सरकार का नियंत्रण था। इसे कहीं से भी राजनीतिक विकेन्द्रीकरण नहीं कहा जा सकता।

प्रशासनिक और राजनीतिक ताकतों का विकेन्द्रीकरण भारतीय लोकतंत्र के दोबारा उठ खड़े होने का प्रतीक है जो सत्ता में आम जन की सहभागिता को प्रतिस्थापित करता है। क्षेत्र विशेष के लोगों को अब मालूम है कि उनकी मूलभूत जरूरतें क्या हैं। उसे पूरा करने के लिए तुरंत क्या होना चाहिए और किस चीज के लिए इंतजार किया जा सकता है। लोगों के बीच आई इस जागरूकता से स्थानीय प्रतिभा और दक्षता को बढ़ावा मिलेगा जबकि रोजगारों का सृजन और पर्यावरण का संरक्षण भी होगा। हालांकि स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिए स्थानीय अर्थव्यवस्था का सक्षम होना भी जरूरी है क्योंकि बिना आर्थिक विकेन्द्रीकरण के राजनीतिक विकेन्द्रीकरण होने पर केन्द्रीय संसाधनों पर निर्भरता और बढ़ती जाएगी।

अंत में, 'सेवा' के हमारे अनुभवों ने दिखाया है कि सामुदायिक आर्थिक संगठन न केवल गरीब महिलाओं की पहुंच में होते हैं बल्कि इससे उनकी कार्यक्षमता में भी कई तरह से विस्तार होता है। पहला, महिलाओं को समाज के लिए किए गए अपने कामों को लेकर नई पहचान मिलती है। दूसरा, सामुदायिक संस्थाओं द्वारा महिलाओं को अपनी संस्था खोलने और बाजार तक सीधे पहुंचने की इजाजत दे दी जाती है जिससे उन्हें छोटे कारोबारियों और अन्य बिचौलियों के शोषण से मुक्ति मिल जाती है। तीसरा, महिलाओं को अपने संसाधनों, पूंजी और कौशल पर अधिकार मिल जाता है। जब वे 'सेवा' से जुड़ती हैं तो अपनी बचत, लाभ, आवास, पेंशन और अन्य लाभों के बारे में मिल–जुलकर फैसला लेती हैं। चौथी और सबसे महत्वपूर्ण बात कि समुदाय में रहने पर महिलाएं सरकारी याजनाओं और कार्यक्रमों का लाभ ले पाती हैं जो वे अकेले रहने पर नहीं ले पाती हैं। और सबसे आखिर में, साथ आने पर न केवल उनकी आवाज को बुलंदी मिलती है बल्कि बाजार में उनकी सौदेबाजी की ताकत भी बढ़ जाती है।

Ela R. Bhatt

(इला आर. भट्ट)

गौर कीजिए

आईएलओ के मुताबिक महिला कामगारों की संख्या के मामले में भारत 131 देशों की सूची में नीचे से 20वें स्थान पर है।

अनुक्रमणिका

संकल्पना

हमारी बात

– संपादकीय

अतिथि संपादक

– सृजन सौ मील समुदायों का

इला आर. भट्ट

मेरी जुबानी

– मुझे कुछ कहना है

असंगठित क्षेत्र

– औरतों के हाथों से छिन रहा रोजगार

विमर्श

– न सुरक्षा, न अधिकार, न प्रतिनिधित्व

अरबिन्द सिंह

– शहरी गरीबी का स्त्रीकरण

प्रो. विभूति पटेल

संघर्ष

– कोई न जाने स्ट्रीट वेंडरों का दर्द

– महिलाएं यानी छिपी हुईं कामगार

संगठित क्षेत्र

– कमाई में औरतें पंद्रह गुना पीछे

पलायन का दर्द

– प्रवासी मजदूर : न घर के न घाट के

मीडिया में महिलाएं

– बिकाऊ हैं पर टिकाऊ नहीं

दीपिका झा

विमर्श

– एक विधिविहीन सेक्टर

सुजैन अब्राहम

कानूनी संरक्षण

– कानून है साथ फिर भी भेदभाव

बिहार

– असंगठित कामगार और बिहार

सराहनीय

– शांति कुटीर में संवर रहा जीवन

– अचार बनाकर बेटियों को ब्याहा

– आस–पास होकर भी दूर हैं ये कामगार

विचार मंच

– क्या कहते हैं जागरूक शहरी

स्रोत : गुगल.कॉम, विकीपीडिया, बिजनेसस्टैंडर्ड.कॉम, आईएमएफ.ऑर्ग, वेजइंडिकेटर.ऑर्ग

मेरी जुबानी

मुझे कुछ कहना है

जानते हैं मैं कौन हूं ? मैं वो हूं जो हर रोज सुबह उठकर बासी घर में झाड़ू लगाकर उसे शुद्ध करती हूं। वैसे घर तो उन सबका है जो इसमें रहते हैं पर झाड़ू मैं ही लगाती हूं। मैं वो हूं जो सुबह की चाय और दिन का खाना बनाती हूं। पति और बेटे की रोटी में घी लगाना नहीं भूलती हूं और अपनी सादी रोटी में भी बेटी का हिस्सा लगाना याद रखती हूं। मैं वो हूं जो दोपहर को पड़ोस की चाची की साड़ी में फॉल लगाने के बाद ही थाली में अपना खाना काढ़ती हूं। चाची से मिले पैसे वैसे तो मेरे होते लेकिन मैं उसे बिना सवाल किये शाम को काम से लौटे पति को सौंप देती हूं। मैं वो हूं जो अपने बेटे को पैदा तो कर सकती हूं पर वो कहां जा रहा है और कब लौटेगा, ये पूछ नहीं सकती हूं। मैं एक बहू हूं, एक पत्नी हूं, एक मां हूं। मैं एक औरत हूं। मेरे बचपन से युवावस्था तक की कहानी मेरी जुबानी।

नहीं मिल सका पोषण

मुझे बचपन से ही बताया गया था कि मैं नाजुक हूं और मुझे लड़कों वाले खिलौनों से नहीं खेलना चाहिए क्योंकि उनसे मुझे चोट लग सकती थी। क्योंकि मैं लड़कों की तुलना में ज्यादा आसान काम करती थी इसलिए मुझे खाने में उनकी तरह घी–मलाई की जरूरत नहीं थी और उनसे एक रोटी कम में ही अपना पेट भरना सीखना चाहिए था। आपको मालूम है सिर्फ इसी वजह से बिहार और मध्य प्रदेश में 6 साल से छोटी 68 फीसद बच्चियां गंभीर कुपोषण की शिकार हैं। अच्छे भोजन में बचपन से ही होने वाली वो कटौती मुझे ताउम्र अपने पैरों पर खड़ा होने से रोकती रही। मेरे हाथों और पैरों को इतनी ताकत नहीं मिली कि मैं लड़कों की तरह का काम कर सकूं।

स्कूल भी छूट गया

मैं अब स्कूल जाने लगी थी। वैसे तो बड़े पापा नहीं चाहते थे कि मैं भी भैया की तरह स्कूल में पढ़ूं मगर मेरी जिद पर वे मान गए थे। पर हाई स्कूल तक पहुंचते–पहुंचते जब मुझे माहवारी होने लगी तो मां ने निषेधाज्ञा लागू कर दी। कहा–बहुत हो गयी पढ़ाई–लिखाई, अब घर बैठ। स्कूल में न शौचालय है न साफ–सफाई, लेने के देने पड़ गए तो! जानते हैं मेरे साथ ही पूरे देश की 66 फीसद लड़कियों ने माहवारी शुरू होते ही स्कूल जाना छोड़ दिया जबकि 23 फीसद ने तो स्कूल से अपना नाम ही कटा लिया। देश के 45 फीसद स्कूलों में शौचालय है ही नहीं तो ऐसा ही होगा न! अब क्या! पढ़ाई पूरी नहीं हुई तो बड़े होने पर अच्छी नौकरी कैसे मिलती। इसलिए मुझे कम पैसे और छोटे ओहदे वाली नौकरी से ही संतोष करना पड़ा।

पढ़ नहीं सकी तो अच्छी नौकरी कैसे

मुझे डाटा इंट्री ऑपरेटर की नौकरी मिल गई। काम बहुत अच्छा नहीं था और पैसे भी कम मिलते थे पर क्या कर सकते हैं। मैं अकेली तो नहीं देश में 120 मिलियन महिलाएं ऐसे ही कामों से जुड़ी हैं। इसलिए असंगठित सेक्टर को महिला सेक्टर भी कह देते हैं लोग। जल्द ही मेरी शादी भी होने वाली थी और अपनी छोटी सी ही सही पर मेरी पहचान बनाने वाली इस नौकरी की चिंता थी।

बच्चे हुए, नौकरी गई

मेरी शादी हो गई है। आजकल मैं क्या कर रही हूं! दो बच्चे हो गए हैं, बस उनकी देखभाल और बूढ़ी सास के ताने सहते दिन काट रही हूं। नौकरी से तो मालिक ने उसी समय निकाल दिया था जब उसे मेरे गर्भ से होने का पता लगा था। बस, वहीं खत्म हो गई मेरी खुद की पहचान।

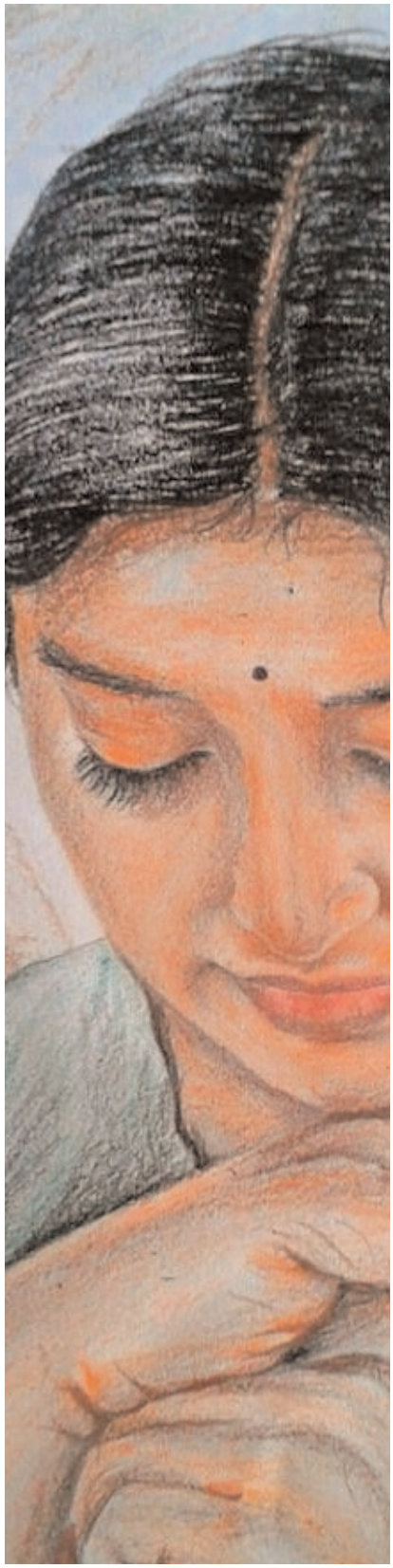

फोटो : पिनट्रेस्ट.कॉम

गौर कीजिए

देश के निजी सेक्टर में काम करने वाली महिलाओं की संख्या जहां 24.5 फीसद है वहीं सरकारी सेक्टर में केवल 17.9 फीसद औरतें कार्यरत हैं।

असंगठित क्षेत्र

औरतों के हाथों से छिन रहा रोजगार

बिहटा की इंदु रोज सुबह 7 बजे की ट्रेन पकड़कर पटना आती हैं और एक कपड़े की दुकान पर सिलाई का काम करती हैं। शाम को 8 बजे तक उन्हें वापसी की कोई न कोई ट्रेन मिल जाती है और रात 10 बजने से कुछ पहले वे अपने घर पहुंच जाती है। पूरे दिन के करीब 10 घंटे दुकान में सिलाई करने के बाद उन्हें महीने के 7 हजार रुपये मिल जाते हैं। दिन के करीब पांच घंटे घर से दुकान तक आने और फिर लौटने में लग जाते हैं। इन घंटों का कोई हिसाब–किताब नहीं होता और न ही ट्रेन से आने और जाने के समय में सुरक्षा की कोई गारंटी होती है। नौकरी भी पक्की नहीं है। जिस दिन खुद काम पर नहीं आ पाती हैं उस दिन किसी और को काम पर रखवाने की जिम्मेदारी भी उन्हीं की होती है वरना पैसे काट लिए जाते हैं। यही हाल है देश की ज्यादातर महिला कामगारों का जो तथाकथित असंगठित क्षेत्र में काम करती हैं।

भारत दुनिया के उन चंद देशों में शुमार है जहां की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने के बजाय घटी है। 1999 से लेकर 2012 तक के दस वर्षों में इसका प्रतिशत 33.7 से घटकर 27 तक पहुंच गया है। करीब 7 अंकों की गिरावट ने देश को इस मायने में 136 देशों की सूची में 124वें स्थान पर पहुंचा दिया है। वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम की एक रिपोर्ट की मानें तो अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी के मामले में सभी ब्रिक्स देश भारत से कहीं आगे हैं। भारत से नीचे जो देश हैं उनमें पाकिस्तान, मिस्त्र और सीरिया जैसे मुल्क शामिल हैं। देश की करीब 400 मिलियन आबादी असंगठित क्षेत्र में काम करती है जिसमें से 120 मिलियन महिलाएं हैं। स्वनियोजित महिलाओं के राष्ट्रीय आयोग के मुताबिक कुल कामकाजी महिलाओं में से 94 फीसद महिलाएं असंगठित क्षेत्र में जबकि केवल 6 फीसद महिलाएं संगठित क्षेत्र में काम करती हैं। ऐसे में असंगठित क्षेत्र को महिलाओं का क्षेत्र कहा जा सकता

हाल बिहार का

- नेशनल सैंपल सर्वे की 2011–12 की रिपोर्ट 'भारत में रोजगार और बेरोजगारी' में कहा गया है कि देश में सबसे कम महिला कामगार बिहार में हैं।
- महिला और पुरुष कामगारों के बीच पारिश्रमिक का सबसे ज्यादा अंतर बिहार में है।
- राष्ट्रीय स्तर पर जहां गांवों में कुल महिला कामगारों की औसत संख्या 26.1 फीसद है वहीं बिहार में 15–59 वर्ष की केवल 9 फीसद महिलाएं ही अर्थव्यवस्था में अपना योगदान दे पाती हैं।
- राज्य में कुल पुरुष कामगारों की संख्या 78.5 फीसद है और यह महिलाओं की तुलना में कहीं ज्यादा है।
- शहरी क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं का राष्ट्रीय औसत 13.8 फीसद है जो कि बिहार में 4.7 फीसद है।
- आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक राज्य में महिला श्रमबल केवल 11 फीसद है।
- एनएसएसओ के मुताबिक बिहार में 80 फीसद महिलाएं घरेलू कार्यों को संपन्न करती हैं।
- राज्य में 8.3 फीसद काम करने वाले हाथ बेरोजगार हैं।

महिलाओं की स्थिति : पूरा देश बनाम बिहार (%)

	MALE		FEMALE	
	ALL-INDIA	BIHAR	ALL-INDIA	BIHAR
Labour force participation rate*	82.7	78.5	33.1	9.0
Worker population ratio*	80.9	76.1	32.3	8.4
Casual labour-employment ratio	29.4	40.9	31.2	49.1
Agriculture worker ratio	43.6	61.4	62.8	72.5
Literacy rate-2011	82.14	73.39	65.46	53.33

स्त्रोत : इंडियनएक्सप्रेस.कॉम

राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार असंगठित क्षेत्र की विशेषताएं

- रोजगार की अनिश्चित प्रकृति
- उपेक्षा और अशिक्षा
- संगठन का छोटा आकार
- प्रति व्यक्ति कम पूंजी निवेश
- संगठन का बिखरा हुआ रूप
- नियोक्ता का अकेले काम करना

गौर कीजिए

केन्द्रीय नौकरियों में 1991 में 7.6 फीसद महिलाएं थीं जिनकी संख्या दो दशक बाद बढ़कर केवल 10 फीसद तक पहुंच सकी।

असंगठित क्षेत्र

Industrial activity	Public sector			Private Sector		
	2009	2010	2011	2009	2010	2011
Agriculture, Forestry, Fishing and Hunting (0)	56.2	60.2	59.6	410.3	416.6	430.8
Mining & Quarrying (1)	75.9	86.6	82.8	6.9	23.9	7.2
Manufacturing (2&3)	79.3	83.0	77.4	910.3	947.2	966.7
Electricity, Gas & Water (4)	51.2	58.0	56.4	2.9	3.0	3.2
Construction (5)	61.2	68.5	65.4	5.2	6.3	7.1
Wholesale & Retail Trade and Restaurants and Hotels (6)	13.7	14.0	13.9	54.0	59.5	70.0
Transport, Storage & Communications (7)	190.0	190.5	190.0	17.1	24.2	27.3
Financing , Insurance, Real Estate & Business Services (8)	212.0	225.2	222.4	329.8	372.6	417.1
Community, Social and Personal Services (9)	2502.1	2352.7	2363.5	749.2	848.2	850.6
Total	**3241.6**	**3138.8**	**3131.3**	**2485.7**	**2701.5**	**2779.9**

है। इस क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को जिन हालातों में काम करना पड़ता है वे काफी अपमानजनक और असुरक्षित हैं। बेहद कम वेतन, असुरक्षित नौकरी, सामाजिक सुरक्षा संबंधी लाभों का न मिलना तथा काम के लंबे घंटे महिलाओं के सामने सबसे दुरूह स्थितियां हैं। असंगठित कामगारों की संख्या वर्ष 2016–17 तक 91.8 फीसद से लेकर 93.9 फीसद तक हो सकती है। असंगठित क्षेत्र में 36 फीसद कर्मचारी वेतनभोगी हैं जबकि 64 फीसद स्वनियोजित। पुरुषों और महिलाओं के औसत पारिश्रमिक क्रमशः 75 और 45 रुपये हैं जो कि मनरेगा के घोषित 100 रुपये से काफी कम है। महिलाओं में बेरोजगारी और छिपी हुई बेरोजगारी का नतीजा है कि पुरुषों की तुलना में कहीं ज्यादा महिलाएं गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही हैं। गांवों से जो महिलाएं शहरों की ओर आती हैं उनमें से ज्यादातर अप्रशिक्षित कर्मचारी होती हैं।

महिला श्रमिकों की संख्या घटने के कारण

2013 में आई अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की एक रिपोर्ट 'ग्लोबल इंप्लायमेंट ट्रेंड्स' में बताया गया है कि किस तरह भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी में लगातार कमी आई है। इसमें कहा गया है कि तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था होने के बाद भी भारत में महिला कामगारों की संख्या घटी है। यह कमी शहर और गांवों दोनों जगहों पर और हर उम्र की महिलाओं में देखी जा रही है। रिपोर्ट में इसकी जो वजहें बताई गई हैं उन्हें इस प्रकार देखा जा सकता है :

- देश में काम करने की उम्र की लड़कियां अब बड़ी संख्या में माध्यमिक स्कूलों में नामांकम करवा रही हैं। जो लड़कियां पहले खेतों में या भट्ठों पर काम करती थीं वे अब स्कूल जा रही हैं जिससे कामगार के रूप में उनकी संख्या घटी है।
- पुरुषों की तुलना में महिलाओं को रोजगार के कम अवसर मिलना भी उनकी संख्या घटने की एक बड़ी वजह है। दक्षता और तकनीकी कौशल पर आधारित रोजगारों की संख्या बढ़ने से प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी है और महिलाओं का इसमें टिक पाना मुश्किल होता जा रहा है।
- वर्ष 2009 में आई वैश्विक मंदी का भी रोजगार पर असर पड़ा है और हर प्रकार के कामों में लोगों की संख्या घटी है जिसमें महिलाएं ज्यादा हैं।
- भारत में कुछ ऐसे खास क्षेत्र हैं जहां महिलाओं की संख्या अपेक्षाकृत ज्यादा है जैसे–खेती, सेल्स और हस्तकला उत्पाद से जुड़े रोजगार। चूंकि पिछले कुछ सालों से इन क्षेत्रों के रोजगार में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है इसलिए महिला कामगारों की संख्या में भी वृद्धि नहीं हुई है और इस पर ब्रेक लगा हुआ है।
- 1994 से लेकर 2010 के बीच देश में महिला कामगारों की संख्या में 9 मिलियन तक की बढ़ोतरी हुई थी। आईएलओ का मानना है कि यह संख्या दोगुनी हो सकती थी यदि देश में महिलाओं को भी उन सब सेक्टरों में काम करने की आजादी होती जिसमें पुरुष काम करते हैं।
- रिपोर्ट के मुताबिक महिलाओं का देश के हर संसाधन पर अधिकार न होने और हर सेक्टर में उनकी मौजूदगी न होने की वजह से भारत में उत्पादकता और आर्थिक विकास की रफ्तार में कमी आई है।
- देश के संगठित अथवा असंगठित दोनों ही क्षेत्रों में असुरक्षा का होना महिलाओं के काम छोड़ने का बड़ा कारण बनता जा रहा है। यह असुरक्षा न केवल शारीरिक है बल्कि रोजगार के स्थायित्व और वेतन संबंधी भी हैं।

उपाय

- अनिश्चितताओं को दूर करने की जरूरत है। रोजगार से जुड़ी दुश्चिंताओं को मिटाने के लिए कानूनी प्रावधानों को ज्यादा से ज्यादा मित्रवत और स्पष्ट बनाना चाहिए।
- ज्यादा से ज्यादा महिलाओं तक कानूनों की पहुंच संभव बनाने और उन्हें कड़ाई से पालन कराने की दिशा में काम करना चाहिए।
- बैंकिंग संस्थाओं का विस्तार और स्व रोजगार के लिए कर्ज देने की नीति का सुगम बनाया जाना चाहिए।
- श्रम बाजार को समझते हुए महिलाओं को भी दक्षता और तकनीकी कौशल का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- पारंपरिक रोजगारों में अभी भी महिलाओं का प्रतिशत ज्यादा है लेकिन इनमें विकास अपेक्षाकृत कम है।
- महिलाओं को कंप्यूटर और मार्केटिंग की कला में भी पारंगत बनाने की जरूरत है। इसके लिए उनकी काउंसिलिंग की जानी चाहिए।
- युवतियों को रोजगार की ओर आकर्षित करने के ज्यादा प्रयास किये जाने चाहिए और उनके लिए दीर्घकालिक रोजगारों की व्यवस्था होनी चाहिए।
- स्वनियोजन में लगी महिलाओं के समूहों को सरकार द्वारा पोषण मिले ताकि वे अधिक स्वतंत्रता से काम कर सकें। ऐसे समूहों को स्वायत्ता देने पर भी विचार हो।`
- निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिला संगठनों की भागीदारी बढ़ाई जाए और उनकी सोच की कद्र हो।
- महिला कामगारों के बच्चों की समुचित संरक्षण किया जाए क्योंकि बच्चों की जिम्मेवारी के कारण ही ज्यादातर महिलाएं या तो काम छोड़ देती हैं या कम जोखिम और वेतन वाले काम करने लगती हैं।
- महिला कामगारों को दलालों और ठेकेदारों के चंगुल से बचाने के उपाय होने चाहिए।

गौर कीजिए

देश में 51 फीसद महिलाएं और 75 फीसद पुरुष शिक्षित हैं।

विमर्श

न सुरक्षा, न अधिकार, न प्रतिनिधित्व

उच्च जाति की महिलाओं में परदा प्रथा के कारण ऐस माना जाता है कि उनकी भूमिका केवल घर तक ही सीमित है जबकि सच्चाई यह है कि महिलाएं भी एक लंबे अरसे से अर्थव्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती आ रही हैं। ऐसी महिलाएं पूरी दुनिया में असंगठित सेक्टर का हिस्सा हैं। एक ऐसा सेक्टर जिसके कर्मचारी नियमित आर्थिक प्रक्रियाओं के हिस्सा नहीं होते हैं और जिन्हें नियमित कर्मचारियों को मिलने वाले लाभ और सुरक्षा प्राप्त नहीं होते हैं। इसका अर्थ मुख्यतः स्वनियोजन और अनियमित रोजगार से लगाया जाता है। यानी वे कर्मचारी जो निबंधित नहीं हैं, जो कानूनी प्रावधानों और सामाजिक सुरक्षा की नीतियों से निर्देशित नहीं होते हैं और जो कम वेतन पाने के कारण और ज्यादातर घर से काम करने के कारण अक्सर गिनती में नहीं आते हैं।

असंगठित क्षेत्र के सबसे ज्यादा दिखने वाले कर्मचारी स्ट्रीट वेंडर हैं। देश में अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र प्रायः एक समान ही समझे जाते हैं। संगठित क्षेत्र का विस्तार न होने के कारण ही बिहार में 94.7 फीसद कर्मचारी असंगठित हैं और इनमें से 50 फीसद से ज्यादा महिलाएं हैं। अनौपचारिक क्षेत्र में जो महिलाएं काम कर रही हैं उनमें खुद का काम करने वाली और वैतनिक दोनों प्रकार की महिलाएं हैं। हालांकि ये दोनों ही एक समान असुरक्षित और अस्थायी हैं क्योंकि उनके पास न तो सुरक्षा है, न अधिकार और न ही प्रतिनिधित्व। **ऐसी महिलाएं मुख्यतः तीन श्रेणियों में रखी जा सकती हैं :–**

1. हॉकर, वेंडर और सब्जी, फल, अंडा, अन्य खाद्य पदार्थ, घरेलू सामान और रेडिमेड कपड़े बेचने जैसा छोटा–मोटा काम करने वाली महिलाएं।
2.घर पर काम करने वाली जैसे बीड़ी और अगरबत्ती निर्माण में लगी महिलाएं, खाने का सामान बनाने वाली और कपड़े पर एप्लिक और अन्य कढ़ाई–बुनाई करने वाली महिलाएं।
3. कृषि श्रमिक, कचरा उठाने वाली, घरों में दाई का काम करने वाली और प्रवासी श्रमिक महिलाएं।

श्रम मंत्रालय ने वर्ष 2008 में देश की कार्यशील आबादी को चार हिस्सों में बांटा है :

- असंगठित पेशागत समूह जिसमें छोटे किसान भी शामिल हैं।
- भूमिहीन कृषि श्रमिक।
- पशुपालन, मछली पालन, बीड़ी निर्माण, पैकेट निर्माण, भवन निर्माण कामगार, बुनकर, कलात्मक कार्य करने वाले, ईंट भट्ठा मजदूर, पत्थर तोड़ने वाले तथा तेल और सॉ मिल में काम करने वाले।
- रोजगार की प्रकृति पर आधारित एक पृथक श्रेणी में कृषि श्रमिक, बंधुआ मजदूर, प्रवासी श्रमिक और आकस्मिक कर्मचारी शामिल हैं।
- एक अन्य श्रेणी में मैला ढोने वाले, सामान ढोने और उतारने वाले मजदूर रखे गये हैं।
- सबसे आखिरी श्रेणी में सेवा प्रदाता श्रमिकों जैसे घरेलू दाई–नौकर, फुटपाथों और सड़कों के किनारे ठेला लगाने वाले लोग।

कई श्रेणियां : कई अर्थ और प्रावधान

असंगठित क्षेत्र के नायकों की विविधताओं को समझा जाना चाहिए। अलग–अलग श्रेणी के लोगों की समस्याओं का हम इस प्रकार अध्ययन कर सकते हैं – उदाहरण के तौर पर यदि हम घरों में दाई का काम करने वाली महिलाओं को लें तो असंगठित क्षेत्र के दायरे में आने वाली ज्यादातर ऐसी महिलाएं गरीब तबके की होती हैं। ये पाया गया है कि इन महिलाओं को 12 से 16 घंटे तक लगातार काम करना पड़ता है और इनके पास संपत्ति के नाम पर कुछ भी नहीं होता है। इसी तरह कलात्मक शिल्प का काम करने वाली महिलाएं भी बड़ी संख्या में इस सेक्टर के तहत आती हैं। इनकी मुख्य समस्याओं में निम्न शामिल हैं :

अरबिन्द सिंह

60 हजार स्ट्रीट वेंडरों को संगठित करने वाले और 19 को–ऑपरेटिव्स के जरिये अन्य असंगठित क्षेत्र के कामगारों को एक मंच पर लाने वाले श्री अरबिन्द सिंह स्वयंसेवी संस्था निदान के संस्थापक हैं। वर्ष 1995 में संस्था की नींव रखने वाले श्री सिंह मानते हैं कि गरीब कामगारों के पास दक्षता तो है लेकिन उन्हें संगठित करने वाली कोई मजबूत संस्था नहीं है। यही सबसे बड़ी कमी है। मार्केट तक पहुंच हो जाय तो असंगठित सेक्टर की बहुत बड़ी आबादी गरीबी से बाहर आ सकती है।

गौर कीजिए

भारत में औरतें पुरुषों के पारिश्रमिक का 62 फीसदी हिस्सा ही पाती हैं जबकि अमेरिका में वे 80 फीसद तक पाती हैं।

◆ घरों में रहकर काम करने के कारण इनका कोई संगठन या यूनियन नहीं बन पाता है और इनका काम भी गिनती में नहीं आ पाता है।
◆ काम के लिए सामानों की आपूर्ति कराने वाले दलाल या बिचौलिये इनका दोहन करते हैं।
◆ सरकारी विभागों की नजर में न आने के कारण सरकारी सहायताओं और मान्यता से भी वंचित रह जाती हैं।
◆ कर्ज मिलने और सब्सिडी प्राप्त करने जैसे मौकों से देर रहती हैं।
◆ कौशल विकास के मौके नहीं मिलते हैं। प्रशिक्षण और कच्चे माल का मिलना भी इनकी बड़ी समस्या है।
◆ जिला उद्योग केन्द्र और ग्रामीण एवं शहरी विकास एजेंसियों की असहयोगी प्रवृत्ति तथा सिडबी और विज्ञान एवं प्रावैधिकी विभाग द्वारा कोई दखल नहीं दिये जाने से नए मौके नहीं मिलते हैं।
◆ कार्य करने के स्थान का साफ, रोशनीयुक्त और सकारात्मक होना। इसका भी काम की गुणवत्ता और कर्मचारी की सेहत पर काफी असर पड़ता है।
◆ शिल्पकारों को मिलने वाला क्रेडिट कार्ड भी बहुत कम लोगों तक ही पहुंच पाता है।
◆ सामानों की मार्केटिंग की सुविधा भी शिल्पकारों का हौसला बढ़ाने के लिए बेहद जरूरी है लेकिन बिहार में यह नदारद है।
◆ शिल्पकारों को मिलने वाला पारिश्रमिक बेहद कम होता है क्योंकि वे महाजनों या बिचौलियों के जरिये कच्चा माल प्राप्त करते हैं और काम पूरा हो जाने के बाद सामान भी उन्हीं को सौंपते हैं, ऐसे में उन्हें उनके काम का पूरा फल नहीं मिल पाता है।
◆ स्थानीय बाजारों या हाट के नियमित रूप से नहीं लगाए जाने के कारण शिल्पकारी, कढ़ाई और बुनाई आदि कामों को समुचित ग्राहक भी नहीं मिल पाते हैं।

असंगठित क्षेत्र की महिलाओं की जरूरतें

अधिकार : असंगठित क्षेत्र की महिलाओं के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है कि उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान हो और वे उनका फायदा उठा सकें। कार्यस्थल पर उन्हें प्राप्त होने वाली सुविधाओं की वे मांग कर सकें और अपने हित में सौदेबाजी भी कर सकें।

आवाज और सौदेबाजी की शक्ति : असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली हर एक महिला की आवाज सुनी जानी चाहिए। साथ ही उन्हें संगठित होकर समवेत स्वर में भी अपनी बात कहनी चाहिए ताकि अपने काम के महत्व को वे स्थापित कर सकें और अपने हक के लिए सौदेबाजी कर सकें।

कानूनी पहचान : हर असंगठित कामगार कर्मचारी के रूप में अपनी पहचान चाहता है और हर योजना और कानून में अपने लिए सशक्त स्थान की मांग करता है।

सामाजिक अधिकार और सुरक्षा : आवास का अधिकार, स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन, सफाई और पानी हर कामगार की मूलभूत जरूरतें ही नहीं उसका अधिकार भी हैं। बीमारी, अपंगता, बुढ़ापा और मृत्यु के समय सुरक्षा और कार्य आधारित गारंटी उन्हें मिलनी ही चाहिए। महिलाओं के लिए मातृत्व और बच्चों का पालन–पोषण संबंधी जिम्मेदारियों को प्राथमिकता के आधार पर देखा जाना चाहिए।

नये मंचों का निर्माण : पहले से मौजूद मंच असंगठित क्षेत्र में काम कर रहीं महिलाओं की नई चुनौतियों को सामने रख पाने में सक्षम नहीं हो पा रहे हैं इसलिए नये मंचों को आगे आना होगा जो ऐसी महिलाओं के हित में कानून पारित करवाने से लेकर बजट में उन्हें स्थान दिलाने तक का काम कर सकें।

सहयोगी आर्थिक नियोजन : आर्थिक नियोजन करने वाले सेक्टरों को ज्यादा सहयोगी बनने की जरूरत है ताकि वे उनके पक्ष में नीतियों को पारित कर सकें।

सामाजिक रूप से दृढ़ अर्थव्यवस्था : देश में एक नई अर्थव्यवस्था का जन्म हो रहा है जो समाज फ्रेंडली है। जिसकी अपनी सामाजिक जिम्मेदारियां हैं और जिनका मौजूद होना लोकतंत्र और आर्थिक नागरिकता के लिए जरूरी है। इसी तरह को–ऑपरेटिव, समुदायों और ऐसे संगठनों का उत्साहवर्द्धन किया जाना चाहिए जो प्रशिक्षण और सपोर्ट कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करें।

असंगठित क्षेत्र के तहत आने वाले अलग–अलग सेक्टरों की भी अपनी अलग–अलग जरूरतें और मांगें हैं।

घरेलू कामगारों की मांगें

◆ मालिकों की प्रताड़ना से मुक्ति।
◆ एजेंसियों द्वारा दोहन किये जाने से आजादी।
◆ काम करने की परिस्थितियों में सुधार और ससमय अवकाश, ओवरटाइम का पारिश्रमिक, बीमारी में मिलने वाली छुट्टी, स्वास्थ्य बीमा और पेंशन की सुविधा मिलना।
◆ जहां घरेलू काम करने वालों के रहने की व्यवस्था होती है वहां अच्छे आवास की व्यवस्था हो।
◆ शिक्षा, मनोरंजन और आराम की सुविधा हो।
◆ बाल मजदूरी न कराई जाय।

घर पर रहकर काम करने वालों की मांगें

◆ सामाजिक सुरक्षा और मातृत्व लाभ मिले।
◆ बच्चों की देखभाल की सुविधा मिले ताकि काम निर्विघ्न समाप्त हो।
◆ खराब कच्चा माल की आपूर्ति, ऑर्डर को अचानक रद्द करने और विलंब से पारिश्रमिक मिलने से बचाव हो।
◆ सामानों की बिक्री के लिए मार्केट तक पहुंच आसान हो।
◆ पीस के आधार पर मिलने वाला पारिश्रमिक और मार्केट में मिलने वाली कीमत निष्पक्ष और सही हो।
◆ स्वनियोजित लोगों की मांगें हैं कि उन्हें पेशागत स्वास्थ्य और सुरक्षा मुहैया कराई जाय और प्रशिक्षण की व्यवस्था हो।
◆ स्वनियोजितों को दोहरे कराधान से मुक्ति मिले।
◆ स्वनियोजितों को जमीन और काम करने के लिए जगह मुहैया कराई जाय।

गौर कीजिए

देश में 48 फीसद औरतें करियर के मध्य तक पहुंचकर काम छोड़ देती हैं। एशिया स्तर पर इसका अनुपात 29 फीसद है।

स्ट्रीट वेंडरों की मांगें

- प्रताड़ना से मुक्ति मिले, सामान जब्ती, जगह से हटाये जाने, मनमाने वारंट, धर–पकड़ और वसूली से आजादी मिले।
- माफियाओं और अधिकारियों का भय समाप्त हो।
- स्ट्रीट वेंडरों को प्राकृतिक रूप से बाजार लगाने का अधिकार मिले और शहरों में उनके लिए स्थायी स्थान बनाया जाय।
- परमिट और लाइसेंस मिलने की प्रक्रिया पारदर्शी और निष्पक्ष बने।

कचरा उठाने वालों की मांगें

- अधिकारियों द्वारा शहर से निकाले जाने के भय और प्रताड़ना से आजादी मिले।
- रिसाइकिल किये जाने वाले कचरे को बिना बाधा उठाने का अधिकार प्राप्त हो।
- मार्केट तक पहुंच आसान हो।

अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को मान्यता मिले।

- समुदाय में मौजूद मनोरंजक सुविधाओं के इस्तेमाल का अधिकार।
- बच्चों को मजदूरी से दूर रखने के लिए सुरक्षा केन्द्रों का निर्माण कराया जाय जहां उनकी देखभाल भी की जा सके।
- कचरा प्रबंधन के लिए उनके संगठनों को नीलामी में शामिल होने का अधिकार मिले।
- को–ऑपरेटिव और सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम बनाए जाएं।

उपरोक्त चार सेक्टरों के अतिरिक्त भी कई ऐसे सेक्टर हैं जिनकी समस्याएं एक समान चुनौतिपूर्ण हैं। इनकी समस्याओं का निराकरण किए जाने से न केवल आर्थिक प्रगति सही दिशा में होगी बल्कि इससे एक बेहतर, स्थायी और समृद्ध अर्थव्यवस्था का निर्माण होगा।

व्यथा मैला ढोने वालियों की

कहां तो आज महिलाएं चांद तक पहुंच रही हैं और कहां अभी भी ऐसी कई औरते हैं जो अपने सिर पर दूसरों का मैला ढो रही हैं। उनके पास न तो सेहत है और न ही सम्मान। दूसरों की गंदगी साफ करने के बाद भी हमेशा उन्हें ही गंदी नजर से देखा जाता है। यूएन वीमेन और जन साहस सामाजिक विकास सोसाइटी की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि 82 फीसद मैला ढोने वाली महिलाएं कभी स्कूल नहीं गईं। उनके बच्चों को भी स्कूलों में हमेशा हेय दृष्टि से देखा जाता है और अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता है। यही वजह है कि इनके बच्चे समय से पहले ही स्कूल छोड़ने पर बाध्य हो जाते हैं। 77 फीसद महिलाओं को आम लोगों को मिलने वाली स्वास्थ्य सुविधा भी नहीं मिलती है। सरकारी अस्पतालों तक उनकी पहुंच न होने के कारण प्रायः गंभीर बीमारियों में भी उनका इलाज नहीं हो पाता है। मैला ढोने वाली 60 फीसद महिलाएं और उनके बच्चे कभी आंगनबाड़ी केन्द्रों में नहीं गए और 59 फीसद के पास जन वितरण प्रणाली की सुविधा नहीं है जिससे कि उन्हें कम दर पर अनाज प्राप्त हो सके। भेदभाव और अमानवीयता का आलम ये है कि स्थानीय निकायों या सरकारों में उनकी भागीदारी शून्य है। सरकारी योजनाएं भी उन तक नहीं पहुंच पाती हैं। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार में किये गये अध्ययन के मुताबिक केवल 4 फीसद महिलाओं को इंदिरा आवास योजना के तहत वित्तीय राशि मिल सकी जबकि 17 फीसद परिवारों को मनरेगा के तहत कोई काम मिल सका। मात्र 13 फीसद महिलाओं को मैला ढोने वालों के पुनर्वास के लिए बनी एसएमआरएस योजना के तहत लाभ मिल सका।

इसी तरह 2014 में ह्यूमन राइट्स वॉच की एक रिपोर्ट में बताया गया कि देश में कड़े कानूनों के लागू होने के बाद अभी भी 100 से ज्यादा लोग मैला ढोने के काम में लगे हुए हैं। यदि ये चाह भी लें तो और कोई काम नहीं कर सकते हैं क्योंकि ऐसा करने से उन्हें स्थानीय लोगों के साथ–साथ खुद पुलिस–प्रशासन के लोग भी रोकते हैं। गांवों में तो ऐसा काम करने वाली महिलाओं को पैसों के बदले

बासी खाना और फटे कपड़े दे दिये जाते हैं। यूएन वीमेन और जन साहस सामाजिक विकास सोसाइटी के अध्ययन में बताया गया है कि मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में ज्यादातर मैला ढोने वाले लोग वाल्मीकि, हैला और हलालखोर जाति के होते हैं तो बिहार में ये मेस्तर और डोम जाति के होते हैं। रिपोर्ट के मुताबिक, भारतीय सरकार ने मैला ढोने के घृणित काम को समाप्त करने के लिए कड़े प्रावधान किये हैं और ऐसे लोगों के पुनर्वास का आदेश दिया है लेकिन उनका प्रभाव नहीं दिखाई देता है। भारतीय संविधान की 14, 17, 21 और 23वीं अनुसूची में भी इस कार्य को असंवैधानिक बताया गया है। मगर बावजूद इसके यह काम 21वीं शताब्दी में भी जारी है। तीनों राज्यों में 70 फीसद महिलाओं को शादी के बाद इस काम में लगना पड़ा जबकि 30 फीसद लड़कियों को बचपन से ही यह काम करना पड़ रहा है। ज्यादातर महिलाओं को इस काम में मासिक 2000 रुपये से भी कम मिलते हैं। 43 फीसद महिलाओं को 1000 रुपये और 56 फीसद को डेढ़ से दो हजार के बीच आमदनी होती है। करीब 50 फीसद मैला ढोने वाली महिलाओं के पास इस काम के अलावा आमदनी का कोई दूसरा जरिया भी नहीं होता है।

गौर कीजिए

पूरी दुनिया में महिलाओं की अर्थव्यवस्था में भागीदारी 40 फीसद है।

विमर्श

शहरी गरीबी का स्त्रीकरण

आर्थिक सुधारों ने श्रमबल को ज्यादा लचीला बनाने के क्रम में महिला कामगारों का अनौपचारीकरण कर दिया है। मल्टीटास्किंग यानी एक साथ कई कामों को करने की दक्षता संबंधी अवधारणा ने स्थायी और संगठित कामगारों को लचीला और असंगठित बना दिया है। यानी भारी–भरकम वेतन उठाने वाले पुरुष कर्मचारियों को कम वेतन व लाभ पाने वाली और पार्ट टाइम काम करने वाली महिला कामगारों से स्थानापन्न कर देना। शहरों में रहकर काम करने वाली अपेक्षाकृत गरीब महिला कामगारों का यह नया चेहरा सामने आ रहा है जो तेजी से असमानतासूलक श्रम बाजार का विस्तार कर रहा है। आम तौर पर स्थानीय सरकारों से अनुकूल माहौल और सहयोग पाने वाले बड़े–बड़े कॉरपोरेट हाउस भी अब बड़े शहरों की अपनी विशाल यूनिटों को बंद कर छोटे–छोटे शहरों में द्वितीय और तृतीय श्रेणी की यूनिट खोल रहे हैं और उनमें अविवाहित लड़कियों को पार्ट टाइम नौकरी दे रहे हैं। अविवाहित लड़कियों को तरजीह दी जाती है क्योंकि वे परिवार और बच्चों की जिम्मेदारी से मुक्त होती हैं। इन 'शहरी श्रम शिविरों' में न तो साफ माहौल होता है और न ही पेशागत स्वास्थ्य की गारंटी। न श्रमिक मानकों का पालन किया जाता है और न ही सामाजिक सुरक्षा की कोई व्यवस्था होती है। तमिलनाडु में सेज की यूनिटों में 'सुमंगली' योजना के तहत युवा लड़कियों की बहाली की जाती है लेकिन वहां उनकी स्थिति बंधुआ मजदूरों से बेहतर नहीं होती।

प्रो. विभूति पटेल

(पीएचडी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र विभाग प्रमुख, एसएनडीटी वीमेंस यूनिवर्सिटी, मुंबई तथा डायरेक्टर, सेंटर फॉर स्टडी ऑफ सोशल एक्सक्लूजन एंड इनक्लूजन पॉलिसी)

देश के ज्यादातर श्रम बाजारों और पूंजी पर आधिपत्य संगठित या औपचारिक सेक्टर का है। यहां 90 फीसद महिलाएं विकेन्द्रीकृत सेक्टर में काम करती हैं जहां श्रम कानूनों का अतिरेक बड़े स्तर पर पाया जाता है। कार्य के अस्थायी और बार–बार दोहराये जाने की प्रकृति के कारण महिलाओं के सामने न तो आगे बढ़ने का कोई विकल्प होता है और न ही अपने काम पर कोई नियंत्रण होता है। महिलाओं के खिलाफ बढ़ती हिंसा और कार्य के प्रति असुरक्षा की वजह से ही बड़ी संख्या में महिलाएं घर से काम करने को तरजीह देने लगी हैं।

शहरी गरीबों में महिलाएं ज्यादा

सी. रंगराजन समिति की रिपोर्ट के मुताबिक, शहरी भारत में रहने वाले 26.4 फीसद लोग गरीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं। 2011–12 में उनकी प्रति व्यक्ति आय 47 रुपये रोज या 1407 रुपये मासिक थी। इनमें भी महिलाएं हमेशा से पुरुषों की तुलना में ज्यादा गरीब रही हैं क्योंकि इनके पास न तो नियमित आय का कोई जरिया होता है और न ही कमाई का कोई दूसरा स्त्रोत। एनएसएसओ के मुताबिक, 1993–94 में शहरों में गरीब घरों में रहने वाली महिलाओं की संख्या जहां 34 फीसद थी वहीं 2013–14 में उनकी संख्या 25 फीसद थी। अध्ययनों में भी यह साबित हो चुका है कि शहरों में गरीबी की मार पुरुषों की तुलना में महिलाओं पर ज्यादा पड़ती है। नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे ने भी अपनी रिपोर्ट में कहा है कि महिलाओं और पुरुषों की कमाई और संसाधनों की खपत में अंतर के कारण ही राज्य सरकारों ने सामाजिक सेक्टरों में खर्च पर बल दिया है।

महिला प्रधान घरों की हालत खराब

हमारे देश में संपत्ति में हिस्सेदारी और कर्ज देने में होने वाली दिक्कतों के कारण ही महिला प्रधान घरों की हालत अच्छी नहीं हो पा रही है। अनब्याही, विधवा, परित्यकता और तलाकशुदा महिलाओं को आज भी अपने अधिकारों को पाने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। 2011 की जनगणना के मुताबिक, देश में 27 मिलियन यानी कुल घरों में से 11 फीसद घर महिला प्रधान हैं। अध्ययनों से यह जाहिर हो चुका है कि लड़कियों को लड़कों की तुलना में कम पढ़ाने–लिखाने और उनकी अपेक्षा तकनीकी शिक्षा कम संख्या में पाने के कारण ज्यादातर लड़कियां अच्छी नौकरी नहीं कर पाती हैं जिसकी कीमत उन्हें पुरुषों की तुलना में ज्यादा गरीबी झेल कर चुकानी पड़ती है। ऐसे में यदि महिला अकेली हो तो तकलीफ और ज्यादा बढ़ जाती है। करीब 40 फीसद महिला प्रधान घरों के पास स्थायी आवास नहीं हैं जबकि 45 फीसद ऐसी महिलाएं एक कमरे वाले छोटे घरों में गुजारा करती हैं। 29 फीसद महिलाओं के पास रेडियो, टीवी या स्कूटर जैसी संपत्ति नहीं होती।

गांवों से शहरों और अन्य राज्यों में पलायन

गांवों में रोजगार की कमी होने के कारण बड़ी संख्या में महिलाएं शहरों की ओर पलायन कर रही हैं। यहां से शुरू हो जाता है उनकी दक्षता में क्षरण का सिलसिला। खेती करने, पशुपालन, मछली पालन, कलात्मक कार्यों और जंगलों पर आधारित कामों की जो दक्षता उनके पास होती है वो सब शहर आने के बाद लुप्त हो जाती है। शहरों में जो काम उन्हें मिलता है उसमें उनकी क्षमताओं को पूरी तरह इस्तेमाल नहीं हो पाता है। घरों में दाई का काम, बच्चों की देखभाल का काम, बीमार लोगों और बुजुर्गों के लिए नर्सिंग का काम, मैला ढोना, सफाई कर्मचारी बनना या वेंडर का काम करने के अलावा उनके पास कोई विकल्प नहीं होता है। इसके अलावा कारखानों में भी जो काम उन्हें दिये जाते हैं वे कम प्रशिक्षण वाले और कम पैसे व गारंटी वाले होते

गौर कीजिए

विकासशील देशों की 60 फीसद और विकसित देशों की 70 फीसद महिलाएं वैतनिक हैं।

हैं। 2006 में आई डा. अर्जुन सेनगुप्ता कमिटी की रिपोर्ट में कहा गया कि देश में घरेलू काम करने वाली करीब आठ करोड़ महिलाओं में से 79 फीसद को सरकार द्वारा तय न्यूनतम वेतन भी नहीं मिलता है। उन्हें न तो अपने पिता के घर से और न ही पति के घर से संपत्ति में कोई हिस्सा मिलता है बल्कि कार्यस्थल पर भी प्रताड़ित होना पड़ता है। घोष ने 2009 में कहा है कि गरीबी का स्त्रीकरण होने के पीछे केवल आर्थिक पिछड़ापन ही नहीं है बल्कि सामाजिक रूप से अभी भी मौजूद पक्षपात और सरकार तथा श्रम बाजार द्वारा बरती जाने वाली भेदभाव प्रमुख वजहे हैं।

अनौपचारिक क्षेत्र में धीमी रोजगार वृद्धि दर

तमाम सरकारी दावों के बाद भी यह एक सच्चाई है कि देश के असंगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर अत्यंत धीमी है। यही कारण है कि शहरों में महिलाएं छोटे और मध्यम आकार के कारखानों में काम करने को बाध्य हैं। इसके अलावा बड़े उपक्रमों में तकनीक आधारित कामों के बढ़ने के कारण बड़ी संख्या में पुरुष बेरोजगार होते जा रहे हैं और घर की जिम्मेदारी औरतों के कंधे पर आती जा रही है। यह भी बदलते आर्थिक–सामाजिक ट्रेंड की एक कड़वी सच्चाई है। घरों में दाई का काम करना अभी भी महिलाओं का क्षेत्र समझा जाता है और इसलिए पुरुषों के घर पर बैठ जाने के बाद महिलाओं को घरेलू दाई का काम करने के लिए निकलना ही पड़ता है।

सेवा क्षेत्र : घरेलू काम

तेजी से बढ़ते हुए मध्यम वर्ग तथा और ज्यादा संपन्न होते उच्च वर्ग के घरों में दाई का काम करने वाली महिलाओं की संख्या में तेजी से इजाफा हुआ है। देखा जाय तो प्रवासी महिलाओं में ऐसी महिलाएं सबसे कम लाभ पाने वाली होती हैं। बच्चों और बूढ़ों की देखभाल करने और घर के काम निबटाने वाली इन महिलाओं का बहुत सारा काम बिना वेतन की श्रेणी में चला जाता है।

स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण और शौचालय : खेदजनक

सेवा क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को अब तक की सरकारों ने पूरी तरह दरकिनार किया है। फिर चाहे वो भोजन हो, स्वास्थ्य या शिक्षा, किसी भी सरकार ने औरतों की इन जरूरतों पर कभी भी ध्यान नहीं दिया। जो कानून और योजनाएं बनाई भी गईं वे सब बहुत जटिल और पहुंच से बाहर हैं। सेवा क्षेत्र में सरकारों ने निवेश कम किया तो निजी सेक्टर की शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ उठाना बूते से बाहर की बात रही है। 2011 की जनगणना के मुताबिक, 20 फीसद शहरी महिलाएं अशिक्षित हैं। एनएफएचएस 3 की रिपोर्ट में कहा गया है कि शहर के गरीब परिवारों के एक–तिहाई बच्चे प्राथमिक स्कूल के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं जबकि करीब आधे बच्चे सातवीं के बाद स्कूल जाना छोड़ देते हैं और छोटे–मोटे धंधों में लग जाते हैं।

जन स्वास्थ्य एवं जनन का अधिकार

नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे, राउंड 3, 2006 के अनुसार, देश की स्लम बस्तियों में रहने वाली एक–तिहाई आबादी अनुसूसित जाति की और आदिवासी है। 15 से 49 साल की 60 फीसद शहरी गरीब महिलाएं एनीमिक हैं और बढ़ती हुई मातृ एवं शिशु मृत्यु दर, समय पूर्व प्रसव और कमजोर नवजात पैदा करने की ओर अग्रसर हैं। शहरी स्लम बस्तियों में करीब एक लाख बच्चे पांच साल के होने से पहले ही काल कलवित हो जाते हैं। ऐसी बस्तियों में रहने वाले केवल 40 फीसद बच्चे ही टीकाकरण के सभी चरणों को पूरा करते हैं। पांच में से एक घर में ही पाइप से पानी की सप्लाई होती है जबकि आधे से भी कम घरों में शौचालय हैं। इन कारणों से न केवल उनकी सेहत पर असर पड़ता है बल्कि शारीरिक छेड़छाड़ करने वालों के लिए भी उन तक पहुंचना आसान हो जाता है।

◆ बड़े उपक्रमों में तकनीक आधारित कामों के बढ़ने के कारण बड़ी संख्या में पुरुष बेरोजगार होते जा रहे हैं और घर की जिम्मेदारी औरतों के कंधे पर आती जा रही है।

◆ रसायनों का इस्तेमाल और विषैली हवा की निकासी की सही व्यवस्था न होने के कारण महिलाओं को आंखों की बीमारी या अल्सर होने का खतरा बना रहता है।

गौर कीजिए

अवैतनिक कार्य करते हुए महिलाएं मर्दों की तुलना में दोगुना से ज्यादा समय व्यतीत करती हैं।

मुंबई पर हुए एक अध्ययन में बताया गया कि महंगाई और खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि का सर्वाधिक बुरा असर महिलाओं पर पड़ता है। गरीब और स्लम इलाकों में रहने वाले पुरुषों की तुलना में 25 फीसद ज्यादा महिलाएं कुपोषण का शिकार पाई गईं। दालों, सब्जियों और अन्य पदार्थों के दाम बढ़ने पर महिलाओं की थाली में से पोषक तत्व सबसे पहले गायब हो जाते हैं। मुंबई में हर तीन में से केवल एक महिला को स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ मिल पाता है। 0 से 19 साल की उम्र तक की लड़कियों में मृत्यु दर लड़कों की तुलना में कहीं ज्यादा है।

असंगठित सेक्टर में स्वनियोजित महिलाएं

वर्ष 2000 में नासवी यानी नेशनल एलायंस ऑफ स्ट्रीट वेंडर्स इन इंडिया ने सात शहरों पर आधारित एक अध्ययन कराया था जिसमें बताया गया कि ज्यादातर महिलाएं जो वेंडर का काम कर रही थीं, उन्हें अपने पतियों के काम छोड़ देने या उनका काम छूट जाने की वजह से बाजार में उतरना पड़ा। ऐसी करीब 30 फीसद महिलाएं और लड़कियां थीं जिन्हें अपने घर के पुरुषों के बेरोजगार हो जाने के बाद वेंडर का काम करने के लिए मजबूर होना पड़ा। महिलाएं इसमें भी पुरुषों के जितना विस्तारित काम नहीं कर सकती हैं क्योंकि उन्हें लोन देने के लिए न तो कोई एजेंसी सामने आती है और न ही बाजार में उनके लिए कोई सुरक्षा मुहैया कराई जाती है।

कचरा प्रबंधन में लगे कामगार

शहरों में जिस तेजी से कचरा बढ़ता जा रहा है उतनी ही तेजी से कचरा चुनने वाले लोग भी बढ़ते जा रहे हैं और इनमें भी सबसे बड़ी संख्या महिलाओं और बच्चों की है। एक अध्ययन के मुताबिक कचरा चुनने वालों में 60 फीसद महिलाएं होती हैं और 20 फीसद बच्चे। मुंबई में घर–घर जाकर कचरा जमा करने वाले करीब एक लाख कर्मचारियों में से 50 फीसद महिलाएं हैं।

गरीब बुजुर्ग महिलाएं

2011 की जनगणना के मुताबिक देश की कुल आबादी में 8.4 फीसद बुजुर्ग महिलाएं हैं जबकि बुजुर्ग पुरुषों की संख्या 7.7 फीसद है। बुजुर्ग महिलाओं में सर्वाधिक पीड़ित महिलाएं शहरों में हैं जहां 64 फीसद महिलाएं अपनी रोज की जरूरत के लिए दूसरों पर आश्रित हैं। ये एक बड़ी वजह है कि खराब स्वास्थ्य के बाद भी देश में बड़ी संख्या में बुजुर्ग महिलाएं काम कर रही हैं।

पेशागत स्वास्थ्य और सुरक्षा

फ्री ट्रेड जोन, स्पेशल इकोनोमिक जोन और एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन बड़ी संख्या में लड़कियों और महिलाओं को घर से काम करने का मौका देते हैं जो पीस आधारित होता है और कम जोखिम और वेतन वाला होता है। इनके अलावे जो महिलाएं कार्यस्थल पर जाकर काम करती हैं उनके लिए काम करने की परिस्थितियां बेहद प्रतिकूल होती हैं। रसायनों का इस्तेमाल और विषैली हवा की निकासी की सही व्यवस्था न होने के कारण महिलाओं को आंखों की बीमारी या अल्सर होने का खतरा बना रहता है।

कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा

महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा में लगातार वृद्धि के बाद सरकार ने 2013 में कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना कानून को पारित किया था। इसके तहत हर स्थल पर जहां महिलाएं काम करती हों, एक समिति का गठन किया जाना अनिवार्य है जो महिलाओं से जुड़े हुए मामलो की सुनवाई करेगा।

निष्कर्ष

सामाजिक सुरक्षा में निवेश किया जाना वर्तमान और भविष्य के कामगारों के लिए बड़ी जरूरत बनती जा रही है। आर्थिक, व्यापारिक, वित्तीय और सामाजिक क्षेत्र की योजनाओं के लिए साफ और सुरक्षित कार्यस्थान मौलिक आवश्यकता होनी चाहिए। इसी तरह सामाजिक सुरक्षा के प्रावधान काम से जुड़े अधिकारों में गिने जाने चाहिए। स्वास्थ्य बीमा, मातृत्व लाभ, पेंशन, क्रेश और सुरक्षा हर योजना और विधान का अविछिन्न हिस्सा होना चाहिए। राज्य और केंद्र सरकारों के लिए असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 को लागू कराना पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। राज्य सरकारों को चाहिए कि वे निजी क्षेत्र के नियोक्ताओं पर भी सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों को लागू कराने का दवाब बनाएं और इसके लिए जागरूकता कार्यक्रमों को चलाएं।

देश मे आर्थिक उदारीकरण की नीति लाखों गरीब महिलाओं के कंधों पर ढोई जा रही है। निर्यात आधारित उपक्रमों में जिनमें चमड़ा उद्योग, वस्त्र निर्माण, हीरा और आभूषण निर्माण तथा खिलौना निर्माण के कामों में बड़ी संख्या में महिलाएं काम लगी हैं। मिठाई की दुकानों से लेकर घर–घर जाकर सामान बेचने तक के काम में महिलाएं अपना योगदान दे रही हैं। मुंबई, दिल्ली, फरीदाबाद और गुड़गांव के अलावा तमिलनाडु और गुजरात के सेज जोन के कारखानों में भी महिलाओं की मौजूदगी देखी जा सकती है। घर बैठ काम करने और कम जोखिम के नाम पर उनसे बहुत कम वेतन पर काम करा लिया जाता है। इन महिलाओं का न तो अपने काम पर कोई नियंत्रण होता है और न ही तरक्की की कोई गुंजाइश। इन्हें तो उस कारखाने का कर्मचारी कहे जाने का हक भी नहीं मिलता है क्योंकि किसी भी तरह की योजना और नीति की जद में वे नहीं आती हैं।

गौर कीजिए

दुनिया के 192 देशों में से केवल 12 देशों में महिला राष्ट्राध्यक्ष हैं।

संघर्ष

कोई न जाने स्ट्रीट वेंडरों का दर्द

औरतों को न सुरक्षा न शौचालय

निदान की रिपोर्ट में बताया गया है कि पटना में हॉकर का काम करने वालों में 78 फीसद पुरुष हैं जबकि 22 फीसद महिलाएं हैं। लगभग सभी पुरुषों के काम में उनकी पत्नियां भी साथ देती हैं। इस हिसाब से देखा जाय तो महिला वेंडरों की संख्या काफी बढ़ सकती है। अध्ययन में पता चला कि कुछ साल पहले तक राजधानी में महिला वेंडरों की संख्या कहीं ज्यादा थी लेकिन बढ़ते अपराध और असुरक्षा के कारण ज्यादातर महिलाओं ने काम छोड़ दिया। साथी पुरुष वेंडरों, पुलिस और निगम के अधिकारियों की प्रताड़ना से तंग आकर महिला वेंडर धीरे–धीरे इस काम से दूर होती चली गईं। हालांकि ज्यादातर महिला वेंडर घूम–घूमकर सामान या सब्जियां बेचने का काम ज्यादा पसंद करती हैं क्योंकि इसमें वे कई झंझटों से बच जाती हैं। करीब 96 फीसद महिला वेंडरों ने माना कि सुरक्षा की कमी उनके काम छोड़ने की पहली वजह रही। इसके अलावा शौचालय की कमी और बच्चों की देखभाल का कोई उपाय न रहने के कारण 82 फीसद महिला वेंडरों ने काम छोड़ दिया। नासवी के ही एक और अध्ययन में बताया गया कि लगभग सभी शहरों की महिला हॉकरों को एक समान पक्षपातपूर्ण माहौल का सामना करना पड़ रहा है। ज्यादातर हॉकर अशिक्षित होती हैं जिसके कारण उन्हें आसानी से लोन नहीं मिल पाता है और वे अपना काम ठीक ढंग से नहीं शुरू कर पाती हैं। बैंकों से लोन नहीं मिल पाने के कारण उन्हें कई बार महाजनों के चंगुल में फंसना पड़ जाता है। इन सब परेशानियों के कारण महिला हॉकर इस क्षेत्र से ही लापता होती जा रही हैं। हालांकि बेंगलुरू में स्थिति थोड़ी भिन्न देखी गई और वहां के व्यस्त मार्केट में सब्जी बेचने वाली महिला वेंडरों की संख्या करीब 70 फीसद तक रही।

ये कहानी है चिंता देवी की। रोज सुबह छह बजते ही वे पटना के बोरिंग रोड चौराहे के पास अपनी टोकरी में फूलगोभी और दूसरी तरकारियां लेकर बैठ जाती हैं। पास में ही मैनपुरा के पास कच्चा मकान है उनका। चौराहे के पास तरकारियों के पैसे थोड़े ज्यादा मिलते हैं लेकिन बचत कुछ खास नहीं हो पाती है क्योंकि जितनी कमाई होती है उसमें उनके अलावा वसूली करने वाले दलालों और पुलिस का भी हिस्सा होता है। तिस पर भी हमेशा जगह मिलने की गारंटी नहीं होती क्योंकि गाहे–बगाहे अतिक्रमण हटाने वाली टीम भी हड़काने पहुंच जाती है। चिंता कहती हैं कि अब तो इसकी आदत हो चुकी है और फिर ये उनके अकेले की चिंता तो है नहीं, उनके जैसी कई औरतें भी हर रोज ऐसे ही जीती हैं।

चिंता देवी और उनके जैसी औरतों को भले ही इसकी आदत हो गई है लेकिन कोई और है जो हर रोज उनके लिए नई लड़ाई लड़ रहा है। निदान, एक ऐसा संगठन जो वर्षों से असंगठित कामगारों विशेषकर गली–कूचों में ठेला लगाने वालों के सम्मान के लिए काम कर रहा है। निदान द्वारा 2010 में पटना शहरी क्षेत्र में स्ट्रीट वेंडरों की स्थिति पर कराये गये एक अध्ययन में बताया गया कि शहर के 72 स्थानीय निकायों में कुल वेंडरों की संख्या करीब 29 हजार है जिसमें से 78.2 फीसद पुरुष जबकि 21.8 फीसद महिलाएं हैं। इनमें से 31.6 फीसद सब्जी बेचने वाले, 15.5 फीसद फल बेचने वाले, 11.2 फीसद मांस–मछली बेचने वाले, 9.2 फीसद कपड़े बेचने वाले और 16 फीसद वेंडर खाद्य पदार्थ बेचने वाले हैं। सभी वेंडर, महिला और पुरुष, 22 से 60 वर्ष तक के हैं। कुल हॉकर्स में से 32 फीसद पटना में रहने वाले हैं जबकि बाकी के लोग राजधानी के आस–पास के इलाकों से आकर अपना कारोबार करते हैं।

रंजन कुमार सिंह

पटना में निदान का काम देख रहे और संस्था के सह संस्थापक श्री रंजन कुमार सिंह बताते हैं कि शहरी जीडीपी में करीब 68 फीसद का योगदान देने के बाद भी इन वेंडरों को न तो सम्मान मिलता है और न ही स्थान। उन्होंने बताया कि स्ट्रीट वेंडरों की समस्याओं का समाधान करने के लिए ही वर्ष 1998 में 'नासवी' यानी नेशनल एसोसिएशन ऑफ स्ट्रीट वेंडर्स ऑफ इंडिया का गठन किया गया। उन्होंने बताया कि अपने गठन के बाद से ही नासवी ने वेंडरों को करदाता बनाने का प्रयास किया है ताकि वे भी आम करदाताओं को मिलने वाली सुविधाओं और लाभों को प्राप्त कर सकें। इसके अलावा संस्था वेंडर्स को सम्मानजनक नागरिक के रूप में प्रतिष्ठापित करने की कोशिश में भी लगी हुई है। श्री सिंह मानते हैं कि मध्यवर्ग इन वेंडरों का सबसे बड़ा ग्राहक वर्ग है लेकिन वही इसे मान्यता देना नहीं चाहता। इसके अलावा मीडिया, पुलिस और प्रशासन को भी इनके हक की लड़ाई में साथ देना चाहिए।

गौर कीजिए

दुनिया के कुल 1.3 बिलियन गरीबों में से 70 फीसद महिलाएं हैं जो रोज 1 डॉलर से भी कम कमा पाती हैं।

संघर्ष

महिलाएं यानी छिपी हुई कामगार

महिलाओं की संख्या दुनिया में आधी है। वो विश्व के पूरे काम का लगभग दो–तिहाई काम करती हैं। विश्व की आय का 1/10 भाग प्राप्त करती हैं और इनके पास विश्व की संपत्ति के सौवें हिस्से से भी कम का स्वामित्व है।

–संयुक्त राष्ट्र, 1980

बिहार में एक बड़ी संख्या वैसे कामगारों की है जिनके कामों की गणना नहीं की जाती है। ये कामगार वे महिलाएं हैं जो दिन–रात काम करती हैं लेकिन फिर भी उनके कामों को मान्यता नहीं दी जाती है। आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक राज्य में महिला श्रमबल केवल 11 फीसद है। यह कहीं से भी सच प्रतीत नहीं होता है। एनएसएसओ के मुताबिक बिहार में 80 फीसद महिलाएं घरेलू कार्यों को संपन्न करती हैं। राज्य के श्रम बल में पुरुषों की कुल भागीदारी राष्ट्रीय औसत के बराबर यानी 83 फीसद है जबकि उनके मुकाबले महिलाओं की संख्या केवल एक–चौथाई है। देश में स्वनियोजित महिलाओं के संगठन के तौर पर काम कर रहे सेवा भारत की 2014 में आई एक रिपोर्ट में कहा गया है कि बिहार में महिलाएं छिपे हुए कामगार की स्थिति में हैं। अपने अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि बिहार के गांवों में लगभग सभी महिलाएं पूरे दिन किसी न किसी काम में ही लगी रहती हैं। उच्च जाति और जमींदार परिवार की महिलाओं को छोड़ दिया जाय तो या तो वे अपने खेतों में काम कर रही होती हैं या किसी और के खेत में मजदूरी कर रही होती हैं या फिर जानवरों की चरवाही कर होती हैं। सेवा ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि आईएचडी के मुताबिक बिहार के गांवों में कामगार महिलाओं की संख्या 56 फीसद है। यह आंकड़ा एनएसएसओ के आंकड़ों से पांच गुना ज्यादा है जबकि पुरुषों की संख्या उतनी ही है जितनी कि सरकारी रिपोर्ट में बताई गई है। इससे जाहिर होता है सरकारी सर्वेक्षणों में महिलाओं की संख्या गिनते समय बड़ी आबादी को छोड़ दिया जाता है। दरअसल घरेलू कामों में व्यस्त रहने वाली महिलाएं ही खुद को गैर–कामगार बताती हैं और अपने काम को महत्वहीन समझती हैं। घर के कामों के अलावा घर के सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, ईंधन संग्रह, पशुपालन और सब्जी बेचने जैसी आर्थिक गतिविधियों में व्यस्त महिलाएं गैर कामगार संख्या का एक–तिहाई हैं। ये औरतें सर्वे में इसलिए छोड़ दी जाती हैं क्योंकि इन्हें बिना भुगतान वाले पारिवारिक श्रम की श्रेणी में रखा जाता है। सेवा की मांग है कि ऐसी महिलाओं को भी कामगार की सूची में स्थान दिया जाना चाहिए।

बिहार में सेवा के लिए रिसर्च को–ऑर्डिनेटर के रूप में काम कर रहीं सुश्री सुस्मिता गोस्वामी बताती हैं कि यह संगठन लंबे समय से महिला कामगारों और विशेषकर असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं के अधिकारों और सुरक्षा के लिए संघर्ष करता आ रहा है। सुश्री गोस्वामी बताती हैं कि महिलाओं के प्रति सेवा के दो प्रमुख लक्ष्य हैं – पूर्ण रोजगार और आत्मनिर्भरता। अपने इन दोनों लक्ष्यों को पाने के लिए सेवा पूरी तरह सजग और सक्रिय है। इसके तहत कई चरणों में महिलाओं को सशक्त बनाया जाता है और उनके स्वनियोजन के प्रयास किये जाते हैं।

प्रशिक्षण : महिलाओं और विशेषकर किशोरियों को रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। इस कार्यक्रम को सेवा युवा संसाधन केन्द्र के अंतर्गत किया जाता है। ये केन्द्र पटना, पूर्णिया और कटिहार में कार्य कर रहे हैं। सुष्मिता ने बताया कि गांवों और सुदूर क्षेत्र की लड़कियां भी अपनी शिक्षा का इस्तेमाल रोजगार के लिए करना चाहती हैं लेकिन उनके पास कोई तकनीकी कौशल नहीं होता है। सेवा ऐसी लड़कियों के लिए दक्षता संवर्द्धन और प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है और फिर उन्हें रोजगार तलाशने या खुद का काम शुरू करने में मदद करती हैं।

साक्षरता : इसी तरह सेवा शक्ति केंद्र के माध्यम से असाक्षरों को साक्षर बनाने का काम किया जाता है। असंगठित क्षेत्र की ज्यादातर महिलाएं पढ़ना–लिखना नहीं जानती हैं जिसकी वजह से दलाल और अन्य नियोक्ता उनका शोषण करते हैं। सेवा अपने केन्द्र में ऐसी महिलाओं को साक्षर बनाती है ताकि वे अपने वेतन और अन्य अधिकारों के बारे में जान सकें।

सेहत : बकौल सुष्मिता सेवा यह मानती है कि अच्छी सेहत महिलाओं की सबसे बड़ी जरूरत है और इसलिए वो ऐसे शिविरों का आयोजन करती है जिनमें महिलाओं को उनके स्वास्थ्य के लिए जागरूक किया जाता है। इसका उद्देश्य सेहत पर होने वाले उन खर्चों को कम करना है जिससे महिलाएं आम तौर पर ज्यादा जूझती हैं।

बचत : सेवा जो एक सबसे महत्वपूर्ण काम कर रही है वो है असंगठित क्षेत्र की महिलाओं को वित्तीय सहयोग देना। यह न केवल महिलाओं के लिए को–ऑपरेटिव सोसाइटी का निर्माण कर उन्हें पैसे जमा करने की सहूलियत प्रदान कर रही है बल्कि महिलाओं में बचत की आदत विकसित करने और समय आने पर उनको पुनः निवेश करने के लिए भी प्रोत्साहित करती है।

सुरक्षा : काम के दौरान सामने आने वाली असुरक्षा से बचाव के लिए यह महिलाओं को संगठित रहने और मिलकर सामना करने की सीख भी देती है। ईंट भट्ठों पर, भवन निर्माण के दौरान या खेतों में मजदूरी करते समय अक्सर दलाल या साथी श्रमिक उनके साथ छेड़छाड़ और दुष्कर्म करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे में महिला श्रमिकों को एक साथ मिलकर उनका विरोध करने की जरूरत है। इससे दलालों का मनोबल घटेगा और महिलाएं ज्यादा सुरक्षित ढंग से काम कर सकेंगी।

गौर कीजिए

दुनिया भर में महिलाएं पुरुषों की तुलना में केवल दो–तिहाई ही कमा पाती हैं।

संगठित क्षेत्र

कमाई में औरतें पंद्रह गुना पीछे

विश्व श्रम संगठन की 2012 में आई एक वैश्विक रिपोर्ट में बताया गया कि भारत के शहरी क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं की संख्या 131 देशों की तुलना में केवल 15 फीसद है और इस आधार पर देश का नंबर नीचे से 11वां है। हालांकि इसमें बदलाव आ रहा है और 1991 से लेकर अब तक शहरी महिला कामगारों की संख्या में हर साल 5. 6 फीसद की दर से इजाफा हुआ है। यह इजाफा ग्रामीण कामगार महिलाओं की संख्या जो कि 2 फीसद है और शहरी कामगार पुरुषों यानी 3 फीसद की तुलना में ज्यादा है (बिजनेस–स्टैंडर्ड. कॉम, 30 जुलाई, 2015)।

भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की मौजूदगी की एक खास बात ये है कि यहां के शहरों में महिलाएं जितना ही अधिक उच्च शिक्षा प्राप्त करती जा रही हैं, पुरुषों के मुकाबले उनके वेतन की दर उतनी ही घटती जा रही है। अभी भी उच्च पद पर कार्यरत महिला कर्मचारियों का वेतन उनके पुरुष सहकर्मियों की तुलना में केवल 56 फीसद है। उसमें भी बिहार की हालत तो और भी खराब है। जहां उत्तराखंड में महिलाएं पुरुषों की तुलना में केवल 9 फीसद कम वेतन पाती हैं वहीं बिहार में उन्हें पुरुषों के मुकाबले 63 फीसद कम वेतन मिलता है। जैसे–जैसे महिलाओं की शिक्षा की श्रेणी बढ़ती जाती है, वेतन का अंतर भी बढ़ता जाता है। 10वीं पास महिलाएं जहां पुरुषों की तुलना में 9. 37 फीसद कम वेतन पाती हैं वहीं उच्च शिक्षा, सीए, सीएस और एमसीए जैसी डिग्री प्राप्त महिलाओं को अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में करीब 44.25 फीसद कम वेतन मिलता है। प्रख्यात अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने इसे 'प्रोफेशनल असमानता' की संज्ञा दी है।

देखा जाय तो देश में महिलाओं की संख्या कुल आबादी का 48 फीसद है, तो इस लिहाज से अर्थव्यवस्था में उनका योगदान भी करीब आधा का ही होना चाहिए लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा है नहीं। अर्थव्यवस्था में महिलाओं की कुल भागीदारी केवल 33 फीसद ही है जो दुनिया के कई अल्प विकसित देशों की तुलना में भी बहुत कम है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के एशिया–पैसिफिक विभाग की एक रिपोर्ट कहती है कि महज 33 फीसद भागीदारी का मतलब है देश की 380 मिलियन कुल काम करने लायक महिला आबादी में से केवल 125 मिलियन ही इस वक्त अर्थव्यवस्था में अपना योगदान दे रही है। इतना ही नहीं भारत में पुरुष और महिलाओं के बीच कार्य में भागीदारी का अंतर जी–20 देशों में सबसे ज्यादा बड़ा अंतर है।

भागीदारी बढ़ाने के लिए नहीं हो रहा काम

देश में अभी भी आधी से ज्यादा काम करने वाली जनसंख्या काम से वंचित है और इस तरह उसकी क्षमता का इस्तेमाल अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में नहीं हो पा रहा है। दुख तो इस बात का है कि सरकार या कंपनियां महिलाओं की क्षमता का विस्तार करने या उनका लाभ उठाने की ओर कोई कदम भी नहीं उठा रही हैं। हालांकि हमारे संविधान ने महिलाओं और पुरुषों के बीच कभी भेदभाव नहीं किया और अनुच्छेदों के जरिये महिलाओं के साथ समानता का भाव रखने की अपील की है। संविधान में वर्णित वे अनुच्छेद जो काम के दौरान महिला–पुरुष में समान भाव रखने को कहती हैं उनमें निम्न हैं :–

अनुच्छेद 14 : महिला और पुरुषों को राजनीति, आर्थिक और सामा. जिक क्षेत्रों में समान अवसर और अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।
अनुच्छेद 15 (1) : धर्म, जाति, लिंग या रंग के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव पर रोक लगाई जानी चाहिए।
अनुच्छेद 15 (3) : महिलाओं के पक्ष में कदम उठाने के लिए राज्यों को विशेष अधिकार देता है।
अनुच्छेद 16 : सार्वजनिक नियुक्तियों में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।
अनुच्छेद 39 (ए) : महिला हो या पुरुष, हर किसी को अपने लिए जीविका के साधन चुनने का अधिकार है और राज्य को इस दिशा में नीतियों का निर्धारण करना चाहिए।
अनुच्छेद 39 (डी) : महिला और पुरुष दोनों को समान काम के लिए समान पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए।
अनुच्छेद 42 : महिलाओं के लिए माहौल सुविधाजनक बनाने और उन्हें मातृत्व लाभ प्रदान करने के लिए राज्यों को प्रावधान बनाने चाहिए।
अनुच्छेद 51 (ए) (ई) : नीतियों को महिलाओं के लिए मर्यादाजनक बनाना चाहिए।

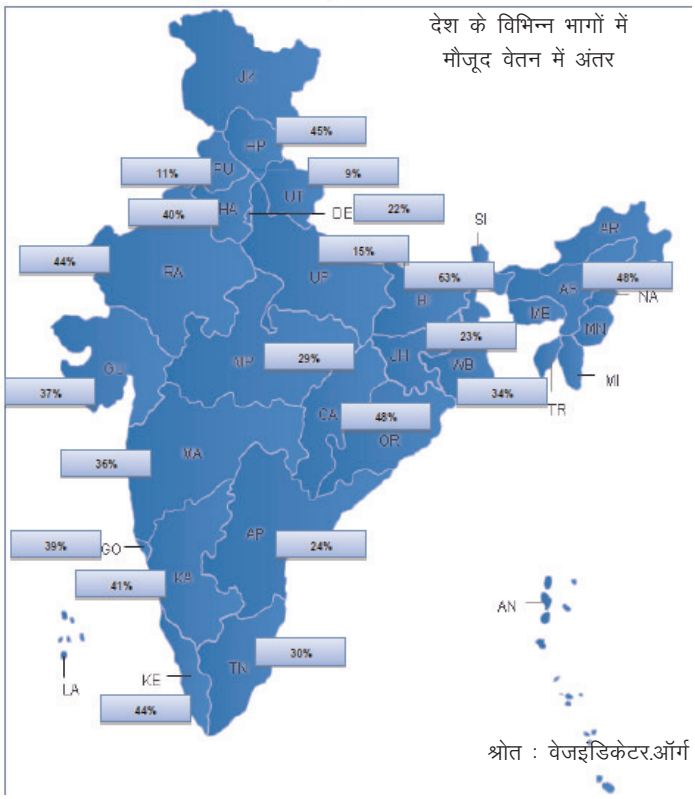

श्रोत : वेजइंडिकेटर.ऑर्ग

गौर कीजिए

दुनिया भर में पार्ट टाइम कामगारों में महिलाओं की संख्या सर्वाधिक है। यूरोपीय यूनियन में पार्ट टाइमरों में 83 फीसद औरतें हैं।

बॉलीवुड की अभिनेत्रियों ने उठायी आवाज

साल 2015 इस लिहाज से बहुत अलग रहा कि बॉलीवुड की अभिनेत्रियों ने पहली बार अपने मेहनताने का मुद्दा खुलेआम उठाया। कई दशकों से भारतीयों के दिलों पर राज करने वाली हिरोइनों को कभी भी अभिनेताओं के समकक्ष नहीं माना गया। फिल्म चाहे कितनी भी बड़ी हिट क्यों न हुई हो, अभिनेत्रियों का पारिश्रमिक अभिनेताओं की तुलना में हमेशा से बहुत कम रहा है। इस साल ऐसा पहली बार हुआ जबकि इंडस्ट्री की टॉप हिरोइनों दीपिका पादुकोण, कंगना रानावत और प्रियंका चोपड़ा आदि ने अपने मेहनताने को लेकर असंतोष जताया और इस मामले पर खुलकर बहस की। अपने बल पर 'पीकू', 'मैरी कॉम' और 'तनु वेड्स मनु' जैसी हिट फिल्में देने वाली इन अभिनेत्रियों ने कहा कि बॉलीवुड में महिलाओं के साथ भेदभाव बरता जाता है और अब वक्त आ गया है उसे दूर करने का। इससे पहले साल की शुरुआत में 87वें एकेडमी अवार्ड समारोह में सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेत्री का सम्मान लेते हुए अभिनेत्री पैट्रिशिया ऑरक्वेट ने मंच से बुलंद आवाज में कहा था ''वक्त आ गया है हमारे समान पारिश्रमिक और पूरे अमेरिका की महिलाओं को समान अधिकार पाने का।'' पैट्रिशिया के आह्वान की गूंज भारत तक में सुनाई दी और बॉलीवुड में भी समान काम के लिए समान पारिश्रमिक पाने की मांग उठने लगी। हमारे देश में अभिनेत्रियों का स्थान कहां है यह इसी से पता लगता है कि फोर्ब्स की 2014 की सूची में केवल एक अभिनेत्री दीपिका पादुकोण का नाम है जिनके खाते में साल भर की कमाई के नाम पर केवल 67.20 करोड़ ही गए जबकि उनकी तीन–तीन फिल्मों ने इस बार अच्छा कारोबार किया था। वहीं सूची में टॉप पर रहने वाले सलमान खान के खाते में सालाना कमाई के 244.5 करोड़ गए जो दीपिका की तुलना में कई गुना ज्यादा हैं। ज्ञात आंकड़ों के मुताबिक दीपिका को एक फिल्म के लिए जहां 8–9 करोड़ मिलते हैं वहीं सलमान को समान काम के लिए 55 करोड़। जाहिर है ऐसे हालात में अभिनेत्रियों का अभिनेताओं के समकक्ष आ पाना टेढ़ी खीर है।

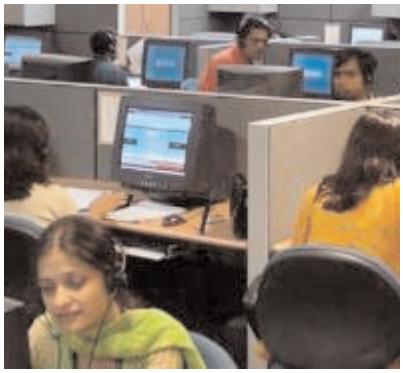

पारिश्रमिक में अंतर के कारण

देश में ज्यादातर महिलाओं की बहाली सेक्रेटरी, टीचर और नर्स के रूप में होती है लेकिन आश्चर्य है कि इन क्षेत्रों में भी महिला–पुरुषों के बीच वेतन में काफी अंतर होता है। वेजइंडिकेटर.ऑर्ग की वर्ष 2013 की रिपोर्ट में बताया गया है कि जहां समान शैक्षणिक योग्यता और कार्य अनुभव वाले दो लोगों के वेतन में सीधा भेदभाव केवल लिंग के आधार पर किया जाता है वहां इसके कई कारण हो सकते हैं।

- परंपरागत रूप से महिलाओं को अवैतनिक कर्मचारी का दर्जा दिया जाता रहा है। उनकी जिम्मेदारी बच्चों और बूढ़ों की सेवा क्षेत्र तक सीमित कर दी गई और इसके लिए उन्हें कोई वेतन देने की बात तक कभी नहीं सोची गई। नतीजतन श्रम क्षेत्र में भी उनकी वही सेवा क्षेत्र वाली छवि बनी रह गई और हमेशा दूसरे दर्जे का कर्मचारी माना गया।
- ज्यादातर ये माना गया कि महिलाएं चुनाव नहीं कर सकतीं बल्कि नियोक्ता उनके हिसाब से काम तय कर उन्हें रोजगार दे देते हैं। एक तरह से कहा जाय तो काम देकर नियोक्ता महिलाओं पर अहसान करते हैं। फिर ऐसे में उन्हें बेहतर सुविधाएं और अच्छा वेतन देने का सवाल ही कहां पैदा होता है।
- एक आम धारणा है कि महिलाएं ज्यादा पैसा जमा नहीं कर सकतीं इसलिए उन्हें खर्च करने का भी अधिकार नहीं होना चाहिए। चूंकि वे खर्च ज्यादा नहीं कर सकतीं इसलिए उन्हें ज्यादा वेतन देने की जरूरत भी नहीं होती है।
- इसी तरह चूंकि महिलाएं शिक्षा और दक्षता पाने में भी पुरुषों की तुलना में पीछे होती हैं इसलिए उन्हें कम योग्यता और कम वेतन वाले कामों में ही रखा जाता है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि या तो वे जोखिम और काम के दौरान प्रशिक्षण की ज्यादा आवश्यकता वाले कामों से दूर रहें या फिर एक तय समय के भीतर काम छोड़ दें।
- कुछ मामलों में नियोक्ता महिलाओं के बारे में पूर्व धारणाओं से ग्रस्त होते हैं और पहले ही यह शर्त रख देते हैं कि या तो महिलाएं कम वेतन पर काम करें अथवा काम न करें। ऐसी स्थिति में महिलाओं के पास चुनाव का कोई विकल्प मौजूद नहीं होता है। इस प्रकार पुरुषों और महिलाओं के बीच वेतन के अंतर से जो बचत होती है उससे नियोक्ता अपने अन्य खर्चों और लागत का लाभ निकाल लेता है।

आईटी सेक्टर में भी भारी अंतर

वर्ष 2014 में आई मॉन्स्टर.कॉम की एक रिपोर्ट में बताया गया कि देश की आईटी सेक्टर में काम कर रहे कुल लोगों में केवल 30 फीसद महिलाएं हैं और उन्हें भी अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में 29 फीसद कम वेतन पर काम करना पड़ता है। ये हाल है देश के सबसे आधुनिक और प्रतिस्पर्द्धी क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं का। समान योग्यता और दक्षता के बाद भी उन्हें पुरुषों के मुकाबले काफी कम वेतन पर समझौता करना पड़ रहा है। आईटी क्षेत्र में जहां एक पुरुष हर घंटे औसतन 359.25 रुपये कमाता है वहीं एक महिला उसी काम के लिए औसतन 254.04 रुपये ही कमा पाती है। इतना ही नहीं 36 फीसद महिला कर्मचारी के मुकाबले करीब 52 फीसद पुरुषों को प्रोन्नति अधिक तेजी और आसानी से मिल जाती है। इसी तरह एक अन्य रिपार्ट में पता चला है कि पहले की तुलना में महिला और पुरुषों की पारिश्रमिक में अंतर का अनुपात तो घटा है लेकिन काम करने की स्थितियों में कोई बदलाव नहीं आया है। 2011–12 में आई एनएसएसओ की 68वीं रिपोर्ट में बताया गया कि खेतों में काम करने वाली महिलाओं की संख्या में तेजी से कमी हुई है। महिलाओं की शिक्षा दर में बढ़ोतरी इसका अहम कारण बनी और वे तेजी से शहरों की ओर आकर्षित होने लगीं। फलतः गांवों में महिला और पुरुषों के बीच कमाई के अंतर दर में भी कमी आई है।

गौर कीजिए

यूरोप के एकल अभिभावक परिवारों में हर 10 में से 9 घरों की प्रमुख महिलाएं हैं।

पलायन का दर्द

प्रवासी मजदूर : न घर के न घाट के

इस समय सबसे ज्यादा प्रवासी मजदूर विनिर्माण सेक्टर में काम कर रहे हैं। एक आकलन के मुताबिक करीब 40 मिलियन कामगार भवन निर्माण के काम में लगे हुए हैं। घरेलू कामों में 20 मिलियन, ईंट–भट्ठों में 10 मिलियन और कपड़ा निर्माण के कारखानों में करीब 11 मिलियन प्रवासी मजदूर लगे हुए हैं। इसके अलावा बड़ी संख्या में प्रवासी खानों और माल ढुलाई तथा खेत मजदूर के रूप में काम कर रहे हैं। प्रवासियों को वही काम दिये जाते हैं जिसे करने में स्थानीय मजदूर कोई रुचि नहीं दिखाते हैं। उन्हें ज्यादातर कार्य के सबसे अंतिम चरण काम का सौंपा जाता है और वे बेहद कम पारिश्रमिक वाले काम होते हैं।

जुलाई, 2014 में तमिलनाडु में 61 मजदूरों की मौत उस इमारत के गिरने से हो गई थी जिसके निर्माण में वे मजदूर लगे हुए थे। सभी मजदूर मौसमी प्रवासी थे और आंध्र प्रदेश और उड़ीसा के गांवों से पलायन कर आए थे। मरने वालों में 20 युवा माताएं थीं। पुरुषों को सातों दिन हाड़–तोड़ मेहनत करने के एवज में 400 रुपये प्रतिदिन जबकि महिलाओं को 225–275 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से मिलते थे। किसी भी मजदूर का न तो कोई बीमा था और न ही काम के दौरान मौत हो जाने या जख्मी हो जाने पर किसी तरह की क्षतिपूर्ति पाने का कोई करार ही था।

भारत में शहरों की बड़ी–बड़ी इमारतों को बनाने में गांवों से पलायन करने वाले मजदूरों का खून–पसीना लगा होता है। वे बड़ी बिल्डिंगें तो बना देते हैं मगर अपने रहने के लिए एक कच्चा मकान तक नहीं बना पाते। शहरों में फुटपाथों पर या सड़क के किनारे प्लास्टिक के शेड में ही उन्हें रात गुजारनी पड़ती है। उन्हें कुछ भी नसीब नहीं होता है, न छत, न भोजन, न सेहत और न ही शिक्षा। देखा जाय तो देश में रोजगार की कहानी पलायन की कहानी का ही दूसरा रूप है। यूं तो एनएसएसओ ने देश में मौसमी पलायन करने वालों की संख्या करीब 15 मिलियन ही बताई है लेकिन यह संख्या प्रवासी मामलों की प्रसिद्ध जानकार प्रिया देसिंगकर के आकलन से बेहद कम है। प्रिया के मुताबिक इस समय देश में पलायन करने वाले लोगों की संख्या करीब 100 मिलियन है। ऐसे में इस बात को बल मिलता है कि देश में अभी तक प्रवासी मजदूरों की सही संख्या जानने की किसी तकनीक का या तो विकास ही नहीं हुआ है या फिर मजदूरों को गंभीरता से नहीं लिया जा रहा है।

अमृता शर्मा और राजीव खंडेलवाल ने कैफेडिससेन्सस.कॉम में लिखा है कि वर्तमान समय में देश में श्रमिकों की गतिशीलता में भी काफी बदलाव आए हैं। बिहार–पंजाब युग से बाहर निकलकर प्रवासी मजदूर नये भौगोलिक क्षेत्रों और नये सेक्टरों की ओर बढ़े हैं। यूपी, बिहार, राजस्थान, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, झारखंड और उत्तराखंड जैसे राज्य अभी भी अपने आर्थिक पिछड़ापन को दूर नहीं कर पाए हैं और श्रमिकों के बड़े आपूर्तिकर्ता बने हुए हैं। दूसरी ओर, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, पंजाब और तमिलनाडु ने अच्छी आर्थिक उन्नति कर मजदूरों को आकर्षित करने का काम किया है। पलायन करने वालों की संख्या और स्वरूप को निर्धारित करने में सामाजिक संबंधों और दलालों की बड़ी भूमिका होती है जो यह तय करते हैं कि मजदूरों को कहां भेजना है।

औरतों के साथ पूरे परिवार का पलायन

2008 में एनएसएसओ की रिपोर्ट में बताया गया कि भारत में जितने मजदूर पलायन करते हैं उनमें से 80 फीसद महिलाएं होती हैं। इंद्राणी मजूमदार ने अपनी एक रिपोर्ट में लिखा है कि हालात हमेशा से ऐसे ही नहीं थे। 1993 में 40 फीसद महिलाएं गांवों से जबकि 38 फीसद शहरों से पलायन करती थीं लेकिन यह संख्या 2008 में बढ़कर क्रमशः 48 और 46 फीसद हो गई। पुरुषों की तुलना में महिलाओं के अधिक संख्या में पलायन करने के पीछे शादी के बाद महिलाओं का अपना घर छोड़ना भी बड़ी वजह है। वे लिखती हैं कि जब महिलाएं पलायन करती हैं तो उनके साथ पूरा परिवार जाता है जबकि मर्द अकेले ही घर छोड़ते हैं। ज्यादातर महिलाएं अपने गहने और बचत की चीजें बेचकर पलायन का खर्च उठाती हैं लेकिन उसके बाद भी घर छोड़ने वाली आधी से अधिक महिलाएं गरीबी, कर्ज और बेरोजगारी में जी रही होती हैं। काम की तलाश में घर छोड़ने वाली करीब 25 फीसद ग्रामीण और 6 फीसद शहरी महिलाएं किसी न किसी दलाल के चंगुल में फंसी थीं जबकि 81 फीसद शहरी और 63 फीसद ग्रामीण महिलाओं ने अपनी मर्जी से घर छोड़ा था। पलायन करने वाली महिलाओं में से 60 फीसद महिलाएं मुख्य रूप से चार क्षेत्रों में काम कर रही थीं जिनमें खेत मजदूर, घरेलू नौकर, भवन निर्माण और ईंट भट्ठा शामिल हैं।

गौर कीजिए

दुनिया भर के बड़े कॉरपोरेट हाउसों में शीर्षस्थ पदों पर केवल एक से तीन फीसद ही महिलाएं हैं।

बिकाऊ हैं मगर टिकाऊ नहीं !

दुनिया भर की खबर लेने वाली पत्रकार बिरादरी कभी खुद खबर नहीं बन पाती है। उनके संगठन, उनका दोहन, शोषण, भेदभाव और कम पारिश्रमिक की खबर कभी किसी अखबार या टीवी चैनल के जरिये सामने नहीं आ पाती। जब पूरी बिरादरी का ये हाल है तो सोचिये उसके हाशिये पर मौजूद महिलाओं के साथ कैसा रवैया अपनाया जाता होगा। आम तौर पर महिलाओं से जुड़ी खबर किसी भी अखबार या टीवी चैनल के लिए सबसे बिकाऊ खबर होती हैं। लेकिन विडंबना है कि खुद उन अखबारों और चैनलों में काम कर रहीं महिलाएं उनके लिए मायने नहीं रखतीं क्योंकि उन्हें टिकाऊ नहीं माना जाता। सब कुछ मानने पर ही है। ये मान लिया जाता है कि अनब्याही महिलाएं ज्यादा काम कर सकती हैं। ये भी मान लिया जाता है कि शादी होते ही महिलाओं की कार्यक्षमता घट जाती है, और अगर वे मां बन गईं तब तो उन्हें काम पर रखना भी बेकार है। ऐसे में अगर नौकरी से नहीं निकाल सकते तो तुरंत उनकी शिफ्टिंग फीचर डेस्क या फिर अपेक्षाकृत कम जिम्मेदारी वाले डेस्क पर कर दी जाती है। नतीजा कि बड़ी संख्या में महिलाएं या तो काम छोड़ देती हैं या पत्रकारों की गिनती में ही नहीं रह जाती हैं।

दीपिका झा

वर्ष 2014 में मीडिया स्टडीज ग्रुप द्वारा देश की मीडिया में महिलाओं की स्थिति जानने को लेकर कराए गए एक अध्ययन में बताया गया कि जिलों में महिला पत्रकारों की संख्या केवल 2.7 फीसद है। इतना ही नहीं देश में छह राज्य और दो केन्द्र शासित राज्य ऐसे भी हैं जहां के जिलों में एक भी महिला पत्रकार नहीं है। हालांकि आंध्र प्रदेश सबमें अच्छी स्थिति में है क्योंकि यहां जिलों में 107 महिलाएं पत्रकार हैं। सर्वे में बताया गया कि बड़े मीडिया हाउसों ने महिला पत्रकारों की तरक्की के बारे में छोटे हाउसों की तुलना में कम सोचा। बड़े और राष्ट्रीय स्तर के अखबारों और चैनलों ने महिला पत्रकारों को मान्यता दिलाने में दिलचस्पी नहीं ली। उनकी तुलना में छोटे और स्थानीय अखबारों व चैनलों ने अच्छा काम किया। इसी तरह बड़े घरानों में महिलाओं की संख्या भी छोटे अखबारों की तुलना में कम रही और जिला स्तर पर तो बेहद कम। स्वतंत्र पत्रकारिता करने वाली महिलाओं की दशा तो और भी खराब है और सर्वे के मुताबिक देश में केवल दो महिला पत्रकार स्वतंत्र पत्रकार के तौर पर मान्यता प्राप्त हैं जिनमें एक फोटोग्राफर हैं। मीडिया स्टडीज ग्रुप ने देश के 28 राज्यों के 255 जिलों से सूचनाओं को एकत्रित कर सर्वे को जारी किया था।

अखबारों में मार्केटिंग जैसे गैर पत्रकारिय विभागों को छोड़ दिया जाय तो डेस्क और रिपोर्टिंग दो सबसे महत्वपूर्ण विभाग हैं। दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं और इनके बिना अखबार का काम नहीं चल सकता। करीब पंद्रह साल पहले बिहार की राजधानी पटना में लगभग सभी प्रिंट मीडिया हाउसों में महिलाएं डेस्क और रिपोर्टिंग दोनों ही विभागों में अच्छी संख्या में कार्यरत थीं। पटना से छपने वाले सभी अखबार यथा, हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ

राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्ययन में की गईं सिफारिशें

- महिलाओं को मीडिया हाउसों में उच्च पदों पर बहाल किया जाना चाहिए ताकि अन्य महिलाओं को सहूलियत हो।
- महिला पत्रकारों को परेशान करने के लिए उनके तबादला करने से मालिकों को बचना चाहिए।
- ओवरटाइम या रात्रि पाली में काम करते समय महिलाओं के लिए कार्यालय में ही खाने की व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि वे पुरुषों की तरह बाहर जाकर नहीं खा सकती हैं।
- कार्यालयों में महिलाओं की यौन प्रताड़ना रोकने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग को प्रबंधकों से बात करनी चाहिए।
- मीडिया हाउसों को विशाखा गाइडलाइन का सम्मान करते हुए कार्यालयों में शिकायत पेटी जरूर रखनी चाहिए।
- ज्यादातर हाउसों में शिकायत सेल का गठन नहीं किया गया है इसलिए उन्हें फिर से कड़ा निर्देश देना चाहिए।
- अखबार संगठनों को ऐसे सेल के निर्माण की जानकारी राष्ट्रीय महिला आयोग को देनी चाहिए।
- प्रेस काउंसिल में एक अन्य सेल का गठन किया जाना चाहिए जो महिला पत्रकारों के तबादले, प्रमोशन, रात्रि पाली, मातृत्व अवकाश और अन्य शिकायतों की सुनवाई करे।
- क्षेत्रीय अखबारों को महिला पत्रकारों को राजनीति सहित मुख्यधारा की रिपोर्टिंग के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- प्रबंधन को जीरो टॉलरेंस की नीति को अपनाना चाहिए।
- महिलाओं को पुरुषों के समान वेतन, प्रमोशन और काम के अवसर दिये जाने चाहिए।

गौर कीजिए

भारत में 93 फीसद महिला कामगार असंगठित सेक्टर में काम कर रही हैं।

मीडिया में महिलाएं

इंडिया, दैनिक जागरण और प्रभात खबर खबरों के चयन और पन्नों की ले–आउट से जुड़े लगभग सभी फैसले स्थानीय स्तर पर ही ले लिया करते थे। ऐसे में डेस्कों पर महिला पत्रकारों की बहाली भी खूब होती थी क्योंकि जरूरत ज्यादा लोगों की होती थी। धीरे–धीरे लगभग सभी हिन्दी और अंग्रेजी अखबारों ने स्थानीय स्तर पर फैसले लेने बंद कर दिये और वे अपने–अपने हेडक्वार्टर से संचालित होने लगे। नतीजतन डेस्कों पर लोगों की जरूरत कम हो गई और फिर शुरू हुआ छंटनी का दौर। जाहिर है महिलाएं निशाने पर रहीं और उन्हें हटाया जाने लगा। जो न जा सकीं उनके लिए काम करने की परिस्थिति इतनी मुश्किल कर दी गई कि उन्होंने खुद ही काम छोड़ दिया। अखबारों में अमूमन दो शिफ्टों–दिन और रात– में होने वाले काम एक शिफ्ट तक ही सीमित कर दिये गये और ड्यूटी अमूमन चार बजे शाम से लेकर देर रात तक की होने लगी। इस व्यवस्था में भी सबसे जल्दी महिलाओं ने सरेंडर किया और कई पत्रकारों ने काम छोड़ दिया। महिलाएं यदि पत्रकार हैं तो वे एक मां, पत्नी और बहू भी हैं। उनके लिए हर भूमिका एक समान महत्वपूर्ण है। ऐसे में जब बात चुनाव की आती है तो सबसे पहले वे अपने करियर को दांव पर लगा देती हैं।

एक बड़ी मुश्किल तब आई जब दिल्ली में हुए शर्मनाक निर्भया कांड के बाद जस्टिस वर्मा और उषा मेहरा कमिटी की सिफारिशों पर सरकार ने कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना के खिलाफ अधिनियम को पारित किया और हर कार्यालय में जहां महिलाएं काम कर रही हों एक शिकायत सेल का गठन अनिवार्य बना दिया। स्थिति ये हो गई कि जहां पुरुष अधिकारी सशंकित रहने लगे तो वहीं कुछ महिलाओं ने भी इसका फायदा लेना शुरू कर दिया। अखबारों में हालत ये हो गई कि महिलाओं को बहाल करने पर ही रोक लग गई। नतीजतन लगभग हर अखबार में डेस्क पर बमुश्किल एक या दो महिलाएं रह गईं। रिपोर्टिंग में महिलाओं की संख्या कुछ ज्यादा है क्योंकि वहां देर रात तक रुकने की अनिवार्यता नहीं होती।

वर्ष 2014 में राष्ट्रीय महिला आयोग ने देश में महिला पत्रकारों की स्थिति पर एक अध्ययन कराया था जिसके नतीजे काफी निराशाजनक रहे थे। अध्ययन में बताया गया कि ये सही है कि पिछले दो दशकों में देश में पत्रकारिता में आने वाली महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है फिर भी उनके काम करने की परिस्थितियां बेहद निराश करने वाली हैं। ज्यादा काम, कम पैसा और गैर बराबर मौका ये सब उनका हौसला घटाने के लिए काफी होते हैं। तिस पर भी प्रोन्नति शायद ही कभी मिलती है। स्ट्रिंगर से शुरू होने वाला उनका सफर अधिक से अधिक चीफ सब एडीटर तक जाकर रुक जाता है। इस अध्ययन में कहा गया कि महिला पत्रकारों को प्रमोशन न दिये जाने के पीछे सबसे बड़ा कारण जो बताया जाता है वो है उनका नाइट शिफ्ट न कर पाना। रिपोर्ट में बताया गया कि देश में कई महिलाएं–जो कि अच्छे हाउसों में भी काम कर रही हैं– दैनिक पारिश्रमिक पर काम कर रही हैं, जिनके पास नियुक्ति पत्र तक नहीं हैं और महीने के अंत में उन्हें 1500 से 3000 रुपये तक ही मिल पाते हैं। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में जहां दैनिक भाष्कर और नई दुनिया जैसे स्थापित मीडिया हाउस हैं, वहां एक भी महिला पत्रकार स्थायी नौकरी में नहीं है। जिनके पास दो से तीन साल का अनुबंध है वे भी खुशकिस्मत हैं क्योंकि इनकी संख्या भी बहुत कम है। ऐसे में जब छंटनी का वक्त आता है तो ये महिलाएं सबसे पहले बाहर जाती हैं। रिपोर्ट के मुताबिक देश के उत्तर–पूर्व में स्थित 7 राज्यों में कुल मिलाकर मात्र 35 महिला पत्रकार हैं जिनमें से 40 फीसद को कभी प्रमोशन नहीं दिया गया जबकि केवल 35 फीसद ही फुल टाइम कर्मचारी हैं।

औरतों के साथ अन्याय और न्याय की खबरों से भरे रहने वाले टीवी चैनलों और अखबारों के भीतर का सच ये है कि खुद वे कभी अपने यहां काम करने वाली स्त्रियों के साथ न्याय नहीं करते। बिहार की ही एक महिला पत्रकार ने बताया कि मातृत्व अवकाश पूरा करने के बाद जब वो काम पर लौटीं तो उन्हें डिमोट कर दिया गया। इसी तरह मध्य प्रदेश की एक पत्रकार को तो मातृत्व अवकाश लेने के कारण काम से हटा ही दिया गया। ज्यादातर महिलाओं ने, जो हाल ही में मां बनी थीं, बताया कि मैटरनिटी लीव लेने के बाद जब वे लौटीं तो दोबारा ज्वायन करने में उन्हें काफी मशक्कत करनी पड़ी। प्रबंधन ने उन्हें काम पर न लौटने देने की हर संभव कोशिश की। एक बड़े अंग्रेजी अखबार में काम करने वाली महिला ने बताया कि मां बनने से पहले तक वे बेहद जिम्मेदार थीं लेकिन जैसे वे मां बनीं उनकी विश्वसनीयता कम हो गई। जबकि सच्चाई तो ये है कि महिलाओं के मां बन जाने से उनकी कार्यक्षमता पर कोई असर नहीं पड़ता है बल्कि वे तो और ज्यादा संवेदनशील तरीके से काम करना सीख जाती हैं। अफसोस कि अखबारों और चैनलों में काम करने वाले पुरुषों को स्त्रियों की दक्षता दिखाई नहीं देती।

गौर कीजिए

देश की कंपनियों के बोर्ड मेंबर्स में केवल 7.7 फीसद महिलाएं हैं।

विमर्श

एक विधिविहीन सेक्टर

बिना सुरक्षा के रोजगार देश के वर्किंग सेक्टर की एक अहम विशेषता बनती जा रही है। न केवल असंगठित क्षेत्र के कामगार बल्कि संगठित क्षेत्र के कर्मचारी भी श्रम कानूनों के प्रावधानों और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। जिस तेजी से महिलाएं असंगठित क्षेत्र में काम करने के लिए बाध्य होती जा रही हैं, श्रम कानूनों और योजनाओं को कागजों और सीमित क्षेत्र से निकालकर वृहद् संख्या तक पहुंचाना असल चुनौती बनता जा रहा है।

वर्ष 2005 में कनफेडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्रीज (सीआईआई) ने कार्यस्थल पर महिला सशक्तीकरण के स्तर को जांचने के लिए एक अध्ययन किया जिसके नतीजे चौंकाने वाले थे। अध्ययन के मुता. बिक, कॉरपोरेट घरानों में महिलाओं की संख्या कुल श्रमबल का केवल 6 फीसद है। सीआईआई के अधीन महिला सशक्तीकरण की राष्ट्रीय समिति की तत्कालीन चेयरपर्सन अनु आगा ने यह रिपोर्ट जारी करते हुए कहा था कि देश की कुल आबादी में आधे से ज्यादा की हिस्सेदारी रखने वाली महिलाओं की संख्या मैनेजर स्तर तक अफसोसनाक स्तर तक कम है। फिर भी वर्किंग सेक्टर में मौजूद महिलाओं की परेशानी केवल संख्या बल को लेकर नहीं है बल्कि उस माहौल को लेकर है जहां उनका हद से ज्यादा शोषण किया जा रहा है। ग्यारहवीं योजना को लेकर जून, 2006 में योजना आयोग को सौंपी गई सामाजिक सुरक्षा कार्यसमूह की रिपोर्ट में कहा गया है कि देश के संगठित और असंगठित क्षेत्र में कुल 39.7 करोड़ कर्मचारी काम कर रहे हैं। इनमें से केवल 7 फीसद लोग ही संगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं और रजिस्टर्ड कंपनी या फर्म से नियमित वेतन का लाभ उठा पा रहे हैं जबकि बाकी के 93 फीसद लोग असंगठित क्षेत्र में हैं और अनियमित रोजगार का दंश झेल रहे हैं। इनमें भी 12.39 करोड़ यानी करीब 96 फीसद महिला कामगार असंगठित क्षेत्र में हैं। 10.6 करोड़ महिलाएं गांवों में जबकि बाकी की महिलाएं शहरी क्षेत्र में काम करती हैं। आंकड़ों के मुताबिक, अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी 1981 के 19.7 फीसद की तुलना में वर्ष 2000 में बढ़कर 25.7 फीसद हो गई और वैश्विक स्तर पर श्रमबल के 'स्त्री चरित्र' को लेकर होने वाले बहस की यह एक बड़ी वजह बनी।

सुजैन अब्राहम

लेखिका जानी–मानी वकील हैं और असंगठित क्षेत्र की महिलाओं के लिए काफी काम कर चुकी हैं

देखा जाय तो वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) की नीति का महिला कामगारों की दशा और दिशा पर नकारात्मक असर रहा। बड़ी संख्या में महिलाएं उन कामों की ओर धकेली जाने लगीं जहां न तो पैसा था और न सुरक्षा। यही वजह है कि महिला प्रधानता वाले रोजगारों की तस्वीर बेहद फीकी नजर आती है। पुरुष कर्मचारियों की तुलना में महिलाओं की कमजोर सौदेबाजी क्षमता और नियोक्ता द्वारा लचीले कामगारों की चाहत ने महिलाओं को तेजी से असंगठित क्षेत्र में लाना शुरू किया। चाहे एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन हो या फिर गारमेंट इंडस्ट्री, जहां भी महिला कामगारों की संख्या 60 फीसद से अधिक है, वहां महिलाओं के लिए रोजगार सबसे निचले स्तर पर ही होता है। उनके लिए सबसे कम दक्षता और प्रशिक्षण वाले कामों का सृजन किया जाता है और सबसे कम वेतन और सामा. जिक सुरक्षा या दावे वाले काम दिये जाते हैं। कॉल सेंटर या बीपीओ जैसे कामों को छोड़ दिया जाय, जहां वेतन अच्छी होती है, तो अन्य जगहों पर स्थिति निराशाजनक ही है।

न केवल भारत में ही बल्कि पूरी दुनिया के श्रम बाजार में 1991 के बाद से बड़ा बदलाव आया है। उत्पादन का काम या तो छोटी इकाइयों और उद्यमों तक सिमट गया है या फिर उसमें बिखराव आ गया है। आउटसोर्सिंग का काम इस हद तक बढ़ा है कि करोड़ों लोग छोटी यूनिटों में या फिर घर बैठे कामों को पूरा करने में सक्षम हो रहे हैं। यानी उत्पादन सुदूर क्षेत्रों से संचालित हो रहा है। पचास साल पहले जब मशीनीकरण की शुरुआत हुई थी तब मजदूर या कर्मचारी पूरे उत्पादन प्रक्रिया की एक छोटी सी कील

गौर कीजिए

तकनीकी, मीडिया और टेलीकम्यूनिकेशन क्षेत्रों में महिलाएं अपेक्षाकृत अधिक संख्या में शीर्ष पदों पर हैं।

नजर आने लगे थे लेकिन आज वही कर्मचारी पूरी प्रक्रिया के छोटे–छोटे पहिये बन गये हैं जिनका मूल उत्पादन केन्द्रों से कोई प्रत्यक्ष संपर्क तक नहीं होता है। श्रम बाजार में आए इस बदलाव का परिणाम श्रम कानूनों और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के लाभों में बिखराव के रूप में सामने आया है और जब बात महिलाओं की हो तब तो लाभ शून्य में चला जाता है। हैरानी की बात है कि श्रम कानूनों में लाया गया पहला बदलाव वर्ष 2005 में 1948 के कारखाना अधिनियम में था जब महिलाओं को रात में काम करने पर पाबंदी लगा दी गई। इस बदलाव का कारण कथित रूप से महिलाओं को कार्यस्थल पर सुरक्षा और समानता प्रदान करना बताया गया था जबकि इसके कई बुरे नतीजे सामने आए। औरतों को समानता और सुरक्षा देने के लिए अन्य दूसरे बदलाव जो जरूरी थे उन्हें दरकिनार कर दिया गया। जाहिर तौर पर इस कानून को महिलाओं के लिए ऐच्छिक बनाया गया था लेकिन जल्दी ही कंपनियों ने इसे अनिवार्य बना दिया। केवल वस्त्र उद्योग के निर्यात विंग ने इस संशोधन का स्वागत किया क्योंकि वहां के संविदा पर बहाल कर्मचारी लंबे समय से अपने लिए किसी जरूरी संशोधन का इंतजार कर रहे थे। हालांकि जो एकमात्र सुरक्षा महिलाओं को मिली वो यह कि यदि वे रात्रि पाली में काम करती भी हैं तो उन्हें घर तक छोड़ने के लिए वाहन की सुविधा दी जाएगी। इसके अलावे महिलाओं के लिए मेडिकल सुविधाओं में बढ़ोतरी, प्रसवकालीन सुरक्षा या यौन उत्पीड़न से जुड़ी समस्याओं पर कोई विशेष प्रावधान न तो जोड़े गए और न ही उनमें संशोधन किए गए।

सीआईआई के 2005 के अध्ययन में कहा गया है कि वास्तव में मौजूदा श्रम कानूनों का महिलाओं को कोई विशेष लाभ नहीं मिल रहा है। चाहे वो काम की परिस्थितियों से जुड़ा कोई प्रावधान हो या यौन प्रताड़ना के लिए बनाई गई नीति क्योंकि प्रताड़ित करने वाले ज्यादातर लोग नीति निर्धारकों के स्तर पर ही होते हैं। कहा जा सकता है कि बिना सुरक्षा के रोजगार अब अपवाद नहीं बल्कि विशेषता बन गई है। जहां तक संगठित क्षेत्र के कर्मचारियों की बात है तो अपने लिए सुविधा और सुरक्षा के प्रावधानों का लाभ उठाने के संघर्ष में वे कमजोर और संख्या में कम होते जा रहे हैं तो वहीं दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र के कामगारों को कई कारणों से अब तक न तो पेशागत सुरक्षा मिल पाई है और न ही सुविधाएं। मौसमी और आकस्मिक रोजगार, कार्यस्थल का स्थायी न होना, काम करने की खराब परिस्थितियां, नियोक्ता और कर्मचारी के बीच अच्छे संबंध न होना और कानूनी या सरकारी संरक्षण प्राप्त न होना इसके प्रमुख कारणों में हैं।

दूसरी ओर महिला कामगारों की तस्वीर ज्यादा साफ है। असंगठित क्षेत्र में महिला और बाल कामगारों की संख्या जैसे–जैसे बढ़ रही है, उनके लिए काम करने के घंटे अधिक लचीले होते जा रहे हैं, श्रम कानूनों तक उनकी पहुंच ज्यादा मुश्किल होती जा रही है। यहां तक कि संगठित क्षेत्र में काम कर रही महिलाओं के लिए भी कानूनों का लाभ उठा पाना टेढ़ी खीर है और ज्यादातर लाभ केवल कागजों तक हैं। ऐसे में फुलटाइम रोजगार का स्थान पार्टटाइम, अस्थायी और अनिश्चित रोजगार ने ले लिया है।

विशेषकर जबसे संविदा पर कर्मचारियों को बहाल करने की नीति और कानून, 1971 लागू किया गया है, नियोक्ताओं के लिए कामगारों को सुविधाओं और लाभों से वंचित रख पाना और भी आसान हो गया है। उत्पादन की प्रक्रिया को ज्यादा से ज्यादा छोटी इकाइयों में बांटा जाने लगा है ताकि कर्मचारियों को लाभ के घेरे में आने से रोका जा सके। दुःख की बात ये है कि सरकारें संविदा पर बहाली करने वाली सबसे बड़ी नियोक्ता है और वही श्रम कानूनों का सबसे ज्यादा उल्लंघन करती हैं या उनसे बचने के उपाय तलाशती हैं। ऐसे में कहा जा सकता है कि कांट्रैक्ट लेबर एक्ट संगठित और असंगठित क्षेत्र में असुरक्षा और अनिश्चितता लाने की सबसे बड़ी वजह है। हालांकि मनरेगा एक आशा की किरण है लेकिन इसमें भी सबसे बड़ी बाधा ग्रामीण महिलाओं का संगठित न होना है। उदारीकरण के बाद के दौर में ग्रामीण महिलाओं को संगठित या जागरूक करने की दिशा में बहुत काम नहीं हुए हैं। ऐसे में मनरेगा के झंडे तले उन्हें एकत्र कर पाना मुश्किल नहीं है। इस दिशा में गुजरात में शुरू की गई 'सेवा' जो कि महिलाओं की स्वयं सहायता समूहों का संगठन है और आंगनबाड़ी सेविकाओं और सहायिकाओं की बहाली जैसे कदम महिलाओं को संगठित करने की दिशा में कारगर हो सकते हैं।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली ज्यादातर महिलाएं गांवों से होती हैं और अपेक्षाकृत गरीब हैं। वे आसानी से कम पैसे और सुरक्षा के बीच काम करने को राजी हो जाती हैं। गर्भावस्था और बच्चों की देखभाल से जुड़ीं उनकी जिम्मेदारियों के प्रति नियोक्ता अक्सर कड़ा रुख अपनाते हैं जिसके कारण उन्हें अपनी नौकरी बीच में ही छोड़नी पड़ती है। इसके अलावे संगठित और असंगठित क्षेत्र के कामगारों के लिए बने कानूनों की पहुंच 90 फीसद कर्मचारियों और मजदूरों तक नहीं हो पाती है। इन कारणों को गंभीरता से लेना होगा और महिलाओं के लिए बन रहे नए और पुराने सेक्टरों में भी सामाजिक नीतियों को कड़ाई से लागू करना होगा।

(लेखिका का यह आलेख इंफोचेंजइंडिया.कॉम में प्रकाशित उनके आलेख का हिन्दी रूपान्तरण है।)

गौर कीजिए

बंबई स्टॉक एक्सचेंज में दर्ज 100 कंपनियों में से केवल 8 कंपनियों में महिला प्रमुख हैं।

कानून है साथ फिर भी भेदभाव

देश में जितने भी श्रम कानून बनाये गये हैं उनमें से ज्यादातर पुरुषों के हितों को ध्यान में रखकर बने हैं। हालांकि केवल मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 ही विशुद्ध रूप से महिलाओं के लिए है क्योंकि पुरुषों पर इसके प्रावधान लागू ही नहीं हो पाते अन्यथा इस कानून में भी उनकी घुसपैठ हो ही जाती। वैसे इस समय जितने भी श्रम कानून देश में मौजूद हैं उनके प्रावधान समान रूप से महिला श्रमिकों पर भी लागू है, जरूरत है उन्हें गंभीरता से लागू करने की। इसके अलावा जिन कानूनों के प्रावधान स्त्रियों पर भी मजबूती से लागू होते हैं और जिनका औरतों के काम करने या न करने पर अत्यधिक प्रभाव होता है उनमें निम्न शामिल हैं – समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 और कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (बचाव, रोकथाम और सुधार) कानून, 2013। अन्य कानूनों के तहत जो महत्वपूर्ण प्रावधान हैं वे इस प्रकार हैं

कारखाना अधिनियम, 1948

इस कानून के तहत संगठित क्षेत्र के कामगारों के हितों की सुरक्षा की गई है। श्रम कानूनों की श्रेणी में यह देश का पहला कानून माना जाता है जिसके तहत पहली बार कामगारों की न केवल समुचित परिभाषा दी गई बल्कि उनके काम करने के माहौल, सेहत, काम के घंटे और बच्चों और स्त्रियों के काम करने को लेकर भी महत्वपूर्ण दिशा–निर्देश जारी किये गये। यह अधिनियम देश में कामगारों, चाहे वे महिला हों या पुरुष, दोनों की सुरक्षा और आर्थिक–सामाजिक बेहतरी के लिए मील का पत्थर साबित हुआ।

- रात के समय काम करने पर प्रतिबंध
- खतरनाक वातावरण में काम कराने पर प्रतिबंध
- कॉटन प्रेसिंग के काम में उन्हें न लगाना
- काम के घंटे प्रतिदिन नौ घंटे तय करना
- काम के अधिकतम बोझ का निर्धारण करना
- कार्यस्थल पर बच्चों के लिए क्रेश का निर्माण करना
- जिस कारखाने में 30 से अधिक महिलाएं कार्यरत हों वहां एक विश्रामगृह बने जहां महिला कामगारों के छह साल से कम उम्र के बच्चों की देखभाल हो सके
- कारखाने में साफ–सफाई और स्नान के लिए पर्याप्त स्थान हो और औरतों के लिए पृथक स्नानागार व वॉशरूम का इंतजाम हो
- हर कारखाने में महिला कामगारों के लिए शौचालय का अलग से इंतजाम किया जाना अत्यंत आवश्यक है।
- विश्रामगृह और कैंटीन की व्यवस्था हो।

कारखाना अधिनियम के तहत अब महिलाओं को रात में काम करने की छूट दी गई है लेकिन उसमें भी कई नियम और शर्तें जोड़ी गई हैं।

- रात्रि में काम के दौरान औरतों को मिलें सुविधाएं
- सुरक्षा और स्वास्थ्य के मोर्चे पर अत्यधिक महत्व
- काम करने के समान अवसर प्रदान किये जाएं
- रात्रि में काम समाप्ति के बाद औरतों को उनके घर तक छोड़ने के लिए सुरक्षित वाहन की व्यवस्था हो

कारखाना अधिनियम के अंतर्गत वर्णित तमाम प्रावधान समान रूप से अन्य कई कानूनों में भी लागू किये गये हैं जिनमें प्लांटेशन लेबर एक्ट, 1951, माइंस एक्ट, 1952, बीड़ी एंड सिगार वर्कर्स एक्ट, 1966, कांट्रैक्ट लेबर (प्रतिबंध एवं नियामक) कानून, 1970 और अंतरराज्यीय आप्रवासी कामगार कानून, 1979 शामिल हैं।

गौर कीजिए

बिहार में शिक्षित बेरोजगार महिलाओं का अनुपात 55.3 फीसद है जबकि पुरुषों में यह 10.1 फीसद है।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948

इस अति महत्वपूर्ण कानून के तहत राज्य सरकार कर्मचारियों को विभिन्न स्तरों पर सुरक्षा प्रदान करती है। यूं तो यह कानून महिला और पुरुष दोनों कामगारों पर समान रूप से लागू होता है लेकिन महिलाओं के लिए इसमें कुछ विशेष प्रावधान भी किये गये हैं।

- बीमित महिला श्रमिक को इसके तहत रोग लाभ, अक्षमता लाभ, मेडिकल लाभ और अंत्येष्टि लाभ प्रदान किया जाता है।
- महिला कामगारों को विशेष मातृत्व लाभ भी इसके तहत प्रदान किया जाता है।
- गर्भावस्था के दौरान उत्पन्न होने वाली परेशानियों, गर्भपात अथवा अन्य बीमारियां, समय पूर्व प्रसव या नवजात की मृत्य होने पर भी इस कानून के तहत विशेष प्रावधान किये गये हैं।
- गर्भावस्था के दौरान मिलने वाला अधिकतम अवकाश 12 सप्ताह का हो सकता है जिसमें से 6 सप्ताह प्रसव की अनुमानित तिथि से पूर्व होने चाहिए।

मातृत्व लाभ प्राप्ति के लिये यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि अमुक तिथि के दौरान महिला से काम नहीं लिया गया।

- यदि प्रसव के दौरान बीमित महिला कामगार की मौत हो जाय तो उस स्थिति में बीमा की राशि उसके द्वारा नामित व्यक्ति अथवा कानून द्वारा मान्य प्रतिनिधि को दी जानी चाहिए यदि बच्चा जीवित हो अथवा जब तक बच्चा जीवित रहे।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961

महिलाओं को काम करने के समान अवसर मिले और पुरुषों के समान ही लाभ और पारिश्रमिक पाना उनका अधिकार है किंतु अपनी जैविकीय अवस्था के कारण कुछ अन्य विशेष लाभ प्राप्त करना भी उनका अधिकार है। इनमें सबसे आवश्यक है गर्भावस्था के दौरान और प्रसव के बाद मिलने वाली सुविधाएं जिनकी वे हकदार हैं।

- इस अधिनियम के अंतर्गत मिलने वाले लाभ को पाने की हकदार हर महिला कामगार को है।
- लाभ की राशि का भुगतान महिला द्वारा अवकाश अवधि के दौरान के वेतन के औसत के हिसाब से होता है।
- यह कानून प्रसव के पहले और बाद में महिला कामगार की अनुपस्थिति के बाद भी उसकी नौकरी को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से बनाया गया है।
- जिन कारखानों में कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू है, उन्हें छोड़कर हर कार्य में रत महिला कर्मचारी इस कानून का लाभ प्राप्त कर सकती है।
- महिलाएं चाहे वे ठेकेदार के जरिये काम से जुड़ी हों या किसी अन्य प्रकार से, यदि उन्होंने साल में 80 दिन भी किसी संस्थान या कारखाने में काम कर लिया है तो वे इस कानून के तहत मातृत्व लाभ पाने की हकदार हैं।
- इस दौरान काम से अनुपस्थित रहने वाली महिलाओं को मिलने वाली लाभ की राशि उनके पूर्व के वेतन के दो–तिहाई से कम नहीं होना चाहिए।
- मातृत्व अवकाश के दौरान महिला के निलंबन या बर्खास्तगी की कार्रवाई को शून्य माना जाएगा।
- यदि महिला गर्भावस्था के दौरान स्वयं काम से गैरहाजिर रहती है तो भी कानून के तहत उसे नौकरी से बर्खास्त या निलंबित नहीं किया जा सकता है।
- बर्खास्तगी या निलंबन की नोटिस का भी महिला को कानून के तहत मिलने वाले लाभों या बोनस पर कोई असर नहीं पड़ेगा।
- यदि नियोक्ता गर्भवती कर्मचारी को मातृत्व अवकाश कर लाभ नहीं देता है या इस दौरान उसे कार्य से बर्खास्त करता है तो इस स्थिति में उसे तीन से लेकर एक साल तक की कैद या दो सौ से लेकर पांच हजार तक का जुर्माना या दोनों की सजा हो सकती है।
- इस कानून के प्रावधानों के कारण ज्यादातर नियोक्ता अपने यहां महिला कर्मचारियों को नहीं रखना चाहते हैं क्योंकि पुरुषों की तुलना में महिलाओं पर उन्हें अत्यधिक व्यय करना पड़ता है। बहुत सारे नियोक्ता महिला कर्मचारियों को विवाह होने के उपरांत ही अपनी कंपनी से हटा देते हैं।

समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976

भारत ही नहीं बल्कि दुनिया की सभी आधुनिक समाजों में महिलाओं को पुरुषों के समान पारिश्रमिक देने की मांग उठती रही है। आरंभ से ही यह माना जाता रहा है कि महिलाएं शारीरिक रूप से पुरुषों के मुकाबले कमजोर होती हैं और इसलिए वे पुरुषों के समान काम भी नहीं कर सकती हैं। इसलिए उन्हें पुरुषों के समान वेतन भी नहीं दिया जा सकता है। 1976 में बने समान पारिश्रमिक अधिनियम ने इसे पुरुषवादी सोच को खारिज कर दिया और एक ऐसे कानून को सामने रखा जो समान काम के लिए महिलाओं को भी समान वेतन देने की सिफारिश करता है। हालांकि इस कानून के लागू होने के बाद भी देश में महिला कर्मचारियों की हालत में बहुत सुधार नहीं हुआ है लेकिन फिर भी अधिनियम मील का पत्थर साबित हुआ है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने महिलाओं को पुरुषों के समान वेतन देने के लिए कई प्रस्ताव पारित किये हैं और भारत ने भी उन्हें मंजूरी दी है। कुछ ऐसे प्रस्ताव जिन्हें मंजूरी नहीं दी गई है उन्हें भी सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार किया गया है। 1975 में पारित और 1976 से लागू हुए समान पारिश्रमिक अधिनियम के तहत नौकरी में महिलाओं के साथ किसी प्रकार का भेदभाव स्वीकार्य नहीं है और न ही उनके साथ वेतन को लेकर कोई विसंगति की जा सकती है। इस कानून की निगरानी केन्द्रिय श्रम मंत्रालय और केन्द्रिय सलाहकार समिति करती है।

कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना (रोकथाम, निषेध व निवारण) कानून, 2013

रोजगार में असमानता और समाज में मिले दोयम दर्ज का नतीजा है

गौर कीजिए

बिहार सहित कई राज्यों में पुरुषों के पलायन कर जाने से परिवार का बोझ महिलाओं के कंधे पर आ गया है।

कानूनी संरक्षण

कार्यस्थलों पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न। शिक्षा के स्तर में गुणात्मक सुधारों और लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के सरकारी अभियानों के बावजूद आज भी नौकरी के लिए महिलाओं का घर से निकलने का अनुपात बेहद कम है। ऐसे में कार्यस्थलों पर महिलाओं को अकेले पाकर अक्सर पुरुष सहयोगी, कर्मचारी या बॉस उनके साथ अश्लील व्यवहार करने पर उतारू हो जाते हैं। पिछले कुछ सालों में दफ्तरों अथवा कार्य के स्थानों में महिला कर्मचारियों के साथ यौन प्रताड़ना के मामलों में बहुत तेजी आई है। वर्ष 2012 के दिसम्बर में दिल्ली में हुए गैंगरेप के बाद केंद्र सरकार ने 2013 में कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना (प्रतिबंध, बचाव एवं उपाय) कानून को पारित किया।

- यह कानून किसी भी कार्यस्थल, चाहे वो संगठित हो या असंगठित, निजी हो या सरकारी, में महिलाओं के साथ यौन दुर्व्यवहार की अनुमति नहीं देता है और ऐसा करने वाले को कड़े दंड के घेरे में लाता है।
- इस कानून के जरिये महिलाओं को जीवन के हर क्षेत्र में आजादी से जीने और लैंगिक रूप से समान स्थिति में काम करने का अधिकार सुनिश्चित होता है।
- इस कानून के लागू होने के बाद महिलाओं की कार्यस्थल पर भागीदारी बढ़ेगी जिससे उनकी आर्थिक व सामाजिक स्तर में भी सुधार होगा।
- यह कानून 1997 की विशाखा गाइडलाइन के तहत दी गई परिभाषा को भी अपनाता है।
- भारतीय संविधान की धारा 19 (एक) में यह सुनिश्चित किया गया है कि देश के सभी नागरिकों को अपनी इच्छा से कार्यक्षेत्र चुनने का अधिकार है और लिंग अथवा अन्य किसी भी आधार पर उनसे भेदभाव नहीं किया जा सकता है।
- विशाखा बनाम राजस्थान सरकार मामले ने यह तय किया था कि लैंगिक समानता तथा जीने और स्वतंत्रता के अधिकार का हनन मानव अधिकारों के हनन का मामल माना जाएगा।
- यह भी तय किया गया कि कार्यस्थल पर महिलाओं से यौन छेड़छाड़ एक गंभीर मामला है न कि किसी के व्यक्तिगत नुकसान का मामला।
- 2013 के कानून के दायरे में न केवल कार्यरत कर्मचारी आती हैं बल्कि कॉलेज और स्कूलों की छात्राएं और अस्पतालों में भरती महिला मरीज भी आती हैं।
- हर नियोक्ता तथा स्थानीय अधिकरण को अपने यहां एक शिकायत समिति का गठन करना होगा जो महिला से दुष्कर्म या प्रताड़ना के मामले की छानबीन करेगी।
- संलिप्तता उजागर होने पर नियोक्ता को 5 हजार तक का जुर्माना देना पड़ सकता है। हालांकि उत्पीड़न के झूठे मुकदमों को हतोत्साहित करने के लिए कानून के तहत उपाय किये गये हैं।
- शिकायत समिति को अपनी रिपोर्ट 9 दिनों के भीतर सौंप देनी होगी।
- समिति को साक्ष्य जमा करने के मामले में सिविल कोर्ट की शक्तियां हासिल होंगी और इसमें दस या ज्यादा कर्मचारी सदस्य हो सकते हैं।

यद्यपि की आज यह कानून देश में लागू है लेकिन इसे कार्यरूप में लाने में कई सालों का इंतजार करना पड़ा है। सबसे पहले वर्ष 2007 में इसका स्वरूप सामने लाया गया था।

असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा कानून, 2008

कारखाना अधिनियम से लेकर अब तक जितने भी कानून बनाए गए थे वे सभी संगठित क्षेत्र के कामगारों से संबंधित थे और उनका लाभ असंगठित क्षेत्र के कामगारों अथवा मजदूरों को नहीं मिल पाता था। ऐसे में एक बहुत बड़ी आबादी किसी भी प्रकार के कानूनी संरक्षण से वंचित थी। वर्ष 2008 में इस कमी को समझा गया और असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों को भी कानूनी छतरी के नीचे लाने की पहल शुरू की गई। असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 इसी पहल का परिणाम था।

- इसका मकसद मजदूरों की सुरक्षा करना था और इसके लिए केन्द्र और राज्य स्तर पर सामाजिक सुरक्षा बोर्ड का गठन किया जाना था।
- ये बोर्ड मजदूरों के जीवन से जुड़े प्रमुख पक्षों को ध्यान में रखकर उनके लिए स्वास्थ्य, विकलांगता, मातृत्व लाभ, वृद्धावस्था और अन्य प्रकार की योजनाओं की सिफारिश करते हैं।
- इसी तरह राज्य बोर्ड मजदूरों के लिए कल्याण योजनाओं की अनुशंसा करता है जिनमें पीएफ, घायल होने पर मिलने वाले लाभ, आवास और बच्चों की शिक्षा के लिए योजनाएं, दक्षतावर्द्धन और वृद्धाश्रम आदि शामिल हैं। इन पर आने वाले खर्च को केन्द्र और राज्य आपसी सहभागिता से उठाएंगे।
- इसके तहत न केवल असंगठित कर्मचारियों को रखा गया है बल्कि अपना काम करने वाले और वेतनभोगियों को भी जगह दी गई है।
- इसके तहत गठित बोर्ड में अन्य सदस्यों के अलावा 34 सांसद, असंगठित कर्मचारी, नियोक्ता, सिविल सोसाइटी और केन्द्र और राज्य सरकार के प्रतिनिधियों का होना आवश्यक है।
- इसके अलावा बोर्ड में अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक और महिलाओं का भी प्रतिनिधित्व होगा।
- योजना के तहत किये जा रहे कामों के रिकॉर्ड और निगरानी के लिए ग्रामीण स्तर पर पंचायतों और शहरों में स्थानीय निकायों को जिला प्रशासन की ओर से निर्देश जारी किया जा सकता है।

गौर कीजिए

बिहार में कृषि क्षेत्र में 75 फीसद महिलाएं दिहाड़ी मजदूर हैं।

असंगठित कामगार और बिहार

बिहार सरकार ने भी अपनी पहल पर असंगठित क्षेत्र के कामगारों और मजदूरों के लिए कई योजनाओं और अधिनियमों को लागू करवाया है। इन याजनाओं और कानूनों का लाभ बिहार राज्य की सीमा के भीतर काम करने वाले मजदूरों को मिलेगा। वर्ष 2012 में राज्य सरकार ने एक टास्क फोर्स का गठन किया जो इस क्षेत्र में काम कर रहे लोगों की समस्याओं का अध्ययन करे और राज्य की अर्थव्यवस्था और सामान्य प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने में महिला कामगारों के छिपे हुए योगदान को उजागर करे। टास्क फोर्स की रिपोर्ट के आधार पर जो अधिनियम लाया गया उसे बिहार असंगठित कामगार कल्याण और सामाजिक सुरक्षा कानून, 2014 के तौर पर स्थापित किया गया। यह कानून पूरी तरह से राज्य सरकार के नियंत्रण में होगा और इसमें केन्द्र का कोई दखल नहीं होगा।

बिहार सरकार के अधीन आने वाली अन्य योजनाएं इस प्रकार हैं :

बिहार शताब्दी असंगठित कार्य क्षेत्र कामगार एवं शिल्पकार सामाजिक सुरक्षा योजना, 2011

◆ योजनान्तर्गत असंगठित क्षेत्र के कामगारों एवं शिल्पकारों की दुर्घटना मृत्यु की दशा में उनके आश्रितों को एक लाख रुपये तथा सामान्य मृत्यु की दशा में तीस हजार का अनुदान देय होगा।

◆ दुर्घटना में उनकी पूर्ण अपंगता तथा आंशिक अपंगता की स्थिति में क्रमशः 75,000 रुपये एवं 37,500 रुपये देय होंगे।

◆ उनके दो बच्चों को कक्षा 9 से 12 तक सरकारी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान एवं पॉलिटेकनिक में पढ़ने पर प्रतिमाह 100 रुपये की दर से वित्तीय सहायता दी जाएगी। योजना की नोडल एजेन्सी बिहार राज्य श्रम कल्याण समिति है।

अन्तरराज्जीय प्रवासी मजदूर योजना

अन्तरराज्जीय प्रवासी मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए बिहार अन्तरराज्यीय प्रवासी कर्मकार (नियोजन एवं सेवा शर्त्तो का विनियमन) नियमावली 1980 पूरे राज्य में 2 अक्टूबर 1980 से लागू है।

◆ प्रवासी मजदूरों के हितों की रक्षा हेतु दिल्ली स्थित बिहार भवन में संयुक्त श्रमायुक्त का एक कार्यालय खोला गया है जिसमें पदाधिकारी पदस्थापित हैं। बिहार राज्य के बाहर कार्यरत प्रवासी मजदूरों को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से ही इसका निर्माण किया गया है।

◆ प्रवासी मजदूर एवं उनके आश्रित परिवार को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए बिहार राज्य प्रवासी मजदूर दुर्घटना अनुदान योजना 01 अप्रैल, 2008 से पूरे राज्य में लागू है।

◆ नियमावली, 2008 एवं संशोधन नियमावली, 2011 के अन्तर्गत बिहार के प्रवासी मजदूर, जो अन्य राज्यों में कार्यरत हैं, की दुर्घटना में मृत्यु होने पर उनके वैध आश्रित को दुर्घटना की तिथि से 180 दिनों के अन्दर एक लाख रुपये देय होंगे जबकि स्थायी पूर्ण अपंगता की स्थिति में 75,000 रुपये व स्थायी आंशिक अपंगता की स्थिति में 37,500 रुपये का भुगतान किया जाता है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना

राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना एक केन्द्र प्रायोजित योजना है। इस योजना के तहत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे असंगठित क्षेत्र के मजदूर या उसके परिवार की अधिकतम पांच सदस्यों का 30,000 रुपये का स्वास्थ्य बीमा किया जाता है जिसकी प्रीमियम राशि का 25 फीसद राज्य सरकार एवं 75 फीसद केन्द्र सरकार वहन करती है।

◆ इसके तहत बीमित परिवार को 30 रूपये नामांकन शुल्क के रूप में देना होता है। बीमित व्यक्ति को बायोमीट्रिक चिप लगा स्मार्ट कार्ड उपलब्ध कराया जाता है।

◆ स्मार्ट कार्डधारी बीपीएल परिवार का कोई सदस्य यदि किसी सूचीबद्ध अस्पताल में पहुंचता है तो साधारण रोग में उसका इलाज बिना फीस लिए किया जाता है और रियायती दर पर उसे दवाई एवं जांच की सुविधा दी जाती है।

◆ एक वर्ष की बीमित अवधि के अंतर्गत गम्भीर बीमारी के कारण अस्पताल में भर्ती होने की स्थिति में अधिकतम 30000 रुपये तक का मुफ्त इलाज किया जाता है।

◆ मुफ्त जांच, मुफ्त भोजन, अस्पताल में भर्ती होने के एक दिन पूर्व से अस्पताल छोड़ने के पांच दिन बाद तक की मुफ्त दवाइ की व्यवस्था की जाती है।

◆ अस्पताल से छूटते समय यातायात व्यय की भरपाई के रूप में प्रत्येक बार 100 रुपये भी दिये जाते हैं।

बीड़ी कामगार गृह निर्माण योजना

यह योजना भारत सरकार द्वारा प्रयोजित है, जिसमें बीड़ी श्रमिकों के गृह निर्माण के लिए प्रति आवास 45,000 रुपये की राशि दी जाती है। इस राशि में से 40,000 केन्द्र सरकार तथा 5000 लाभुक द्वारा वहन किया जाता है। इसमें भी चार हजार की राशि राज्य सरकार द्वारा

गौर कीजिए

आईएचडी के सर्वे के मुताबिक बिहार में कृषि कार्य में लगीं 70 फीसद महिलाएं पलायन करने वाले परिवारों से थीं।

अनुदान के रूप में दी जाती है।

भवन एवं अन्य सन्निर्माण कर्मकार कल्याण योजना

भवन एवं अन्य सन्निर्माण कर्मकार (नियोजन एवं सेवा शर्तें विनियमन) अधिनियम 1996 एवं बिहार भवन एवं अन्य सन्निर्माण कर्मकार (नियोजन एवं सेवा शर्तें विनियमन) नियमावली 2005 के अनुसार कर्मकार कल्याण बोर्ड का गठन किया गया।

- इस अधिनियम के अंतर्गत 10,00000 रुपये की लागत से अधिक निर्माण कार्य कराने वाले संवेदकों से लागत का एक प्रतिशत सेस वसूल किया जाता है।
- भवन अथवा निर्माण कार्य में संलग्न निर्माण कामगारों के लिए सेस की राशि से कल्याण बोर्ड द्वारा बारह कल्याणकारी योजनाएं चलायी जा रही है, जिसमें प्रमुख योजनाओं के तहत निर्माण श्रमिकों को मकान मरम्मति, औजार एवं साईकिल क्रय हेतु 15000 रुपये का अनुदान दिया जाता है।
- अब तक बोर्ड में बिहार के विभिन्न जिलों के लगभग 38,000 निमार्ण श्रमिकों को पंजीकृत किया जा चुका है। इस योजना के अन्तर्गत अब तक 11,822 कामगारों पर लगभग 17.74 करोड़ रूपये का व्यय किया गया है।

निदेशालय नियोजन एवं प्रशिक्षण (नियोजन पक्ष)

राज्य के शिक्षित, कुशल एवं अकुशल बेरोजगारों को नियोजन पाने में सहयोग देने के लिए सभी जिलों में नियोजनालयों एवं नियोजन मार्गदर्शन केन्द्रों की स्थापना श्रम संसाधन विभाग के अन्तर्गत निद. `शालय नियोजन एवं प्रशिक्षण (नियोजन पक्ष) के नियंत्राणाधीन की गयी है।

नियोजन सह व्यावसायिक मार्गदर्शन

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य के बेरोजगार युवकों को रोजगार का अवसर प्रदान करने हेतु नियोजन मेलों का आयोजन किया जाता है। विश्व के नियोजन बाजार में नियोजन के नये–नये स्वरूपों से राज्य के सुदूर क्षेत्रों के बेरोजगारों को अवगत कराने के उद्देश्य से नियोजन मेला का आयोजन किया जाता है। सभी सीआईसी केन्द्रों के लिये पत्र–पत्रिकाओं की व्यवस्था की जाती है तथा नियोजन पदाधिकारियों/कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अलावा समुद्रपार नियोजन बाजार में बेरोजगार युवकों को अधिक से अधिक नियोजित करने के उद्देश्य से निदेशालय नियोजन एवं प्रशिक्षण में एक 'बिहार राज्य समुद्रपार नियोजन ब्यूरो' की स्थापना की गयी है।

ड्राइविंग सीट और घर दोनों साथ–साथ संभाला

वर्ष 2013 में राजधानी पटना में प्रीपेड ऑटो सेवा के जरिये महिलाओं को ऑटो ड्राइविंग का मौका दिया गया था। यह पहला मौका था जब महिलाएं ड्राइवर की सीट पर थीं और पुरुष यात्री के रूप में पीछे की सीट पर। शुरुआत अच्छी रही और करीब 35 महिलाओं ने ड्राइविंग सीट पर कब्जा कर लिया। लेकिन दो साल के बाद आज महज पांच महिलाएं पटना जंक्शन पर हैं और दो एयरपोर्ट पर। बाकी महिलाओं ने दो साल में ही इस काम को छोड़ दिया। पूछने पर ऑटो ड्राइवर कंचन बताती हैं कि काम बहुत चुनौतीपूर्ण और मुश्किल है। स्टेशन पर औरतों के लिए प्रीपेड का अलग काउंटर न होना बड़ी बाधा है। सुबह छह बजे से लेकर शाम के छह बजे तक की ड्यूटी होती है। इस दौरान पुरुष ऑटो ड्राइवरों का वर्चस्व होता है और पोस्टपेड ऑटो की भरमार होती है। इनके बीच केवल तीन महिलाओं को यात्रियों के लिए संघर्ष करना बेहद मुश्किल हो जाता है। इसके अलावा यात्रियों में भी ज्यादातर पुरुष होते हैं जो कई बार हमसे अभद्र व्यवहार करते हैं तो काम छोड़ देने का मन करता है। बकौल कंचन दो साल में ज्यादातर महिला ड्राइवरों ने इन वजहों से ही काम छोड़ दिया। वो कहती हैं कि हमारी मजबूरी है कि हमें यह काम करना पड़ रहा है। न तो सरकार का सहयोग मिल रहा है और न ही आम लोगों का। पुरुष यात्री तक साथ नहीं देते। एक बार चार महीने का परमिट मिला लेकिन उसके बाद परमिट भी दोबारा नहीं दिया गया। सड़क पर ऑटो चलाते हुए कब पकड़ लिये जाएंगे, कोई ठिकाना नहीं है। कंचन विधवा हैं और ड्राइवरी की कमाई से अपनी तीन बेटियों को पाल रही हैं। दो बेटियों को सरकारी स्कूल में और एक को प्राइवेट में पढ़ा रही हैं। इस बारे में पटना जिला ऑटो–रिक्शा चालक संघ के कार्यकारी अध्यक्ष श्री नवीन मिश्रा बताते हैं कि यदि महिला ऑटो चालकों को सहयोग और बढ़ावा मिले तो ये बहुत अच्छा काम करके दिखा सकती हैं। उन्होंने कहा कि उनके और संघ के प्रयासों से अब जल्द ही महिलाओं को कई प्रकार की सब्सिडी मिलने वाली है ताकि सड़क पर उनका चलना आसान हो जाय। झारखंड में महिलाएं धड़ल्ले से ऑटो चला रही हैं जिसे गुलाबी गैंग के नाम से जाना जाता है। लेकिन बिहार में यह योजना फेल हो गई क्योंकि यहां उन्हें सपोर्ट करने वाले लोग नहीं हैं। सबसे ज्यादा विरोध पुरुष ऑटो ड्राइवर ही करते हैं।

स्त्रोत : दैनिक जागरण

गौर कीजिए

आईएचडी के सर्वे के मुताबिक बिहार में महिलाओं की औसत मजदूरी 47 से 60 रुपये के बीच है।

सराहनीय

शांति कुटीर में संवर रहा जीवन

जहां एक ओर महिलाओं के लिए काम के अवसर कम और मुश्किल बने हुए हैं वहीं दूसरी ओर कई ऐसे लोग हैं जो इन मुश्किलों को दूर करने के प्रयास में लगे हैं और वो भी चुपचाप। न कोई तमाशा न कोई शोरगुल। हमने ऐसे ही कुछ लोगों का पता लगाया और उनके कामों और संघर्षों को सामने लाने की कोशिश की है।

शांति कुटीर का संचालन कर रहीं राखी शर्मा और भिक्षुकों द्वारा बनाए गए सामान।

राजधानी पटना के बीचोंबीच पाटलिपुत्र कॉलोनी में बसा है शांति कुटीर। ये कुटीर है उन लोगों का जिन्हें इंसानों की श्रेणी में भी शायद ही रखा जाता है। भिक्षुक। भिखारी या भिक्षुक चाहे स्त्री हों या पुरुष, हर जगह घृणा और संदेह की नजरों से ही देखे जाते हैं। ऐसे में उनके पुनर्वास और रोजगार की तो बात करना भी दूर है। शांति कुटीर में ऐसे भिक्षुकों का न केवल पुनर्वास कराया जाता है बल्कि उनके परिजनों की तलाश कर उन्हें सामान्य नागरिक की तरह जीने का मौका दिया जाता है। इसके अलावा उन्हें प्रशिक्षण के द्वारा टेराकोटा, जूट और बांस से निर्माण कार्य तथा सिलाई और ब्यूटीशियन जैसे कामों में दक्ष कर रोजगार के अवसर पाने और कई बार खुद का काम शुरू करने के योग्य भी बनाया जाता है।

शांति कुटीर का संचालन कर रहीं श्रीमति राखी शर्मा बताती हैं कि सरकार के सहयोग से किया जा रहा यह काम इतना आसान नहीं था। वर्ष 2014 के जुलाई माह में इस मिशन को 'सक्षम' के नाम से शुरू किया गया था। मकसद था अक्षम साबित किये जा चुके लोगों को सक्षम बनाना। अपने नाम के अनुरूप ही मिशन ने भिक्षुकों को पुनर्वासित कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने का काम शुरू किया। शांति कुटीर में केवल महिला भिक्षुकों को रखा जाने लगा जबकि पुरुषों के लिए अलग आवास की व्यवस्था की गई। राखी बताती हैं कि डेढ़ साल में करीब 150 भिक्षुक इस केन्द्र में लाई गईं जिनमें से 124 को दोबारा उनके परिवार वालों से मिलवा दिया गया। बाकी भिक्षुक जिनके परिजनों का पता नहीं लग सका उन्हें केन्द्र में रखकर ही हस्तशिल्प व अन्य प्रकार का प्रशिक्षण दिया जा रहा है ताकि वे अपने पैरों पर खड़ी हो सकें। इस दौरान भिक्षुकों की बार–बार काउंसिलिंग कराई जाती है ताकि उनका आत्मविश्वास बना रहे और वे दोबारा कभी भिक्षावृत्ति की ओर न लौटें। राखी ने बताया कि उनके केन्द्र के जरिये बलात्कार पीड़िताओं का भी पुनर्वास कराया जा चुका है। केन्द्र में रहने के दौरान महिला भिखारियों का पूरा हुलिया बदलने की कोशिश की जाती है। इसके लिए उनकी नियमित स्वास्थ्य जांच कराई जाती है और जरूरत पड़ने पर सर्जरी और महिलाओं का प्रसव भी कराया जाता है। यदि खराब हालत में पहुंचे किसी भिखारी की मौत हो जाय तो उसका किया कर्म भी कराया जाता है। बकौल राखी काम सीखने के बाद जो लोग केन्द्र से बाहर जाकर काम करना चाहते हैं उन्हें बाहर भी काम तलाशने में मदद की जाती है। इसके अलावे महिला भिखारियों के साथ रहने वाले बच्चों की पढ़ाई–लिखाई की व्यवस्था केन्द्र के भीतर ही की जाती है। बच्चों को मार्शल आर्ट और नृत्य व अन्य कलाओं का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। राखी बताती हैं कि इतना करने के बाद भी कई बार भिक्षुक वापस भिक्षावृत्ति की ओर लौट जाते हैं तो बहुत दुख होता है। ऐसा ज्यादातर उनके साथ होता है जो किसी भी हालत में सुधरना नहीं चाहते हैं और पुनर्वास केन्द्र उन्हें कैदखाने की तरह लगता है। बहरहाल, तमाम परेशानियों के बाद भी राखी लगातार अपने काम में जुटी रहती हैं। जल्द ही भिक्षुकों द्वारा बनाए गए सामानों की बिक्री की भी व्यवस्था की जा रही है।

शांति कुटीर में रहने वाले भिक्षुकों द्वारा बनाए गए सामान।

गौर कीजिए

कहा जाता है कि बिहार में मिथिला चित्रकला की शुरुआत विधवा स्त्रियों से हुई जो खाली समय में घर को रंगती थीं।

सराहनीय

अचार बनाकर बेटियों को ब्याहा

हुनर और लगन असंभव को भी संभव बनाने का माद्दा रखते हैं। अपनी हुनर को पांच और परिवारों की आय का जरिया बना दिया पटना की शोभा सिन्हा जी ने। आज वे इस दुनिया में नहीं हैं लेकिन शोभा अचार के नाम से कई घरों में वो अभी भी जिंदा हैं। 1995 में अपने घर से अचार बनाने का काम शुरू करने वाली शोभा जी ने एक–दो और महिलाओं को अपने काम से जोड़ा और उन्हें कमाई का जरिया दिया। कुछ समय बाद महिला उद्योग संघ का भी साथ मिला और उनके छोटे से काम ने कारोबार का रूप ले लिया। इस समय करीब दस लोग शोभा अचार से जुड़े हैं और उनके परिवार इस कुटीर उद्योग से फल–फूल रहे हैं।

शोभा अचार का काम देख रहीं दिवंगत शोभा जी की बहू रागिनी सिन्हा ने बताया कि उनके अचार शुद्धता की कसौटी पर खरे हैं और पूरी तरह साफ और शुद्ध मसालों से बनाए जाते हैं। सारा काम घर से ही संचालित होता है और बगीचे की क्यारियों में मसाले और जड़ी–बूटियां उगाई जाती हैं। यहां काम करने वाली महिलाएं मसालों को छानने और कूटने से लेकर भरावन तैयार करने और पैकिंग तक का काम करती हैं। ज्यादातर महिलाएं स्थापना के समय से ही जुड़ी हैं और यहां से होने वाली आय से अपना और परिवार का गुजारा कर रही हैं। शोभा अचार केवल होम डिलीवरी के जरिये ही ग्राहकों तक पहुंचता है इसलिए डिलीवरी करने के लिए कुछ पुरुष भी यहां काम करते हैं। रागिनी जी कहती हैं कि उनकी योजना अब मशीनों को भी लाने की है ताकि काम का विस्तार किया जा सके। 14 साल से अचार निर्माण में लगी पुतुल देवी (35) के तीन बच्चे हैं। वे सुबह से शाम तक यहां काम करती हैं और इससे होने वाली कमाई को बच्चों की पढ़ाई में खर्च करती हैं। पुतुल के पति पेंट करने का काम करते हैं। बच्चों पर खर्च के बाद बचने वाले पैसे को वे अपने खाते में जमा करती हैं। पुतुल कहती हैं कि यहां काम करने में सुरक्षित महसूस करती हैं और घर जैसा माहौल मिलता है। इसी तरह उषा देवी (45) शोभा अचार की शुरुआत के दिनों से ही इस काम में जुड़ी हैं। उन्होंने तो अपनी दो बेटियों की शादी भी कर ली है और एक बेटे को स्कूल भेज रही हैं। पति ठेला चलाते हैं। उषा देवी भी अपनी कमाई को बचत खाते में जमा करती हैं। पुतुल और उषा देवी के अलावे अन्य महिलाएं भी हैं जो शोभा अचार के जरिये अपना और परिवार का भरण–पोषण कर रही हैं। रागिनी सिन्हा मानती हैं कि अगर उनके जैसे छोटे उद्यमियों को सरकार का भी सहयोग मिले तो न केवल लघु उद्योगों का मनोबल बढ़ेगा बल्कि उनका विस्तार होगा और पुतुल और उषा जैसी और महिलाओं को सुरक्षित माहौल में काम करने के मौके मिलेंगे।

शोभा अचार

अकेले उठाई जिम्मेदारी

पटना के बोरिंग रोड में रहने वाली शोभा वर्मा ने तमाम मुश्किलों के बाद भी अपना हौसला नहीं छोड़ा और दो बच्चों को लेकर अकेले ही जिंदगी के रास्ते पर चल पड़ीं। पहले पिता समान ससुर का साया सिर से उठा तो 2013 में पति भी दुनिया से चले गए। रास्ता लंबा और कठिन था लेकिन हौसला उससे भी ज्यादा बड़ा था। पहले पार्लर का काम शुरू किया और कुछ समय बाद अपने घर के नीचे ही रेडिमेड कपड़े की दुकान खोल ली। सिलाई का हुनर पहले से ही था सो बैंक से लोन लिया और धीरे–धीरे सिलाई मशीन खरीद कर स्कूल ड्रेस सिलने का काम शुरू कर दिया। काम समय पर हो और सिलाई मन मुताबिक हो तो कामयाबी मिलने से कोई नहीं रोक सकता। इसी सोच के साथ शोभा जी ने अपना काम जारी रखा। मेहनत रंग लाने लगी और अब तो शहर के कई बड़े और प्रतिष्ठित स्कूल अपना ऑर्डर देने लगे हैं। ड्रेस के अलावा वार्षिकोत्सव और फैन्सी ड्रेस का भी वे ऑर्डर लेती हैं।

शोभा जी बताती हैं कि ससुर जी के समय में दीघा में मुर्गी पालन केंद्र भी चलता था लेकिन ससुर की मौत के बाद वो बंद हो गया। पति के देहांत के बाद तो लगा जैसे सब तरफ अंधेरा छा गया। लेकिन फिर सास ने साथ दिया तो अकेले ही चल पड़ीं। पटना के जेडी वीमेन्स कॉलेज से पढ़ाई पूरी करने वाली शोभा वर्मा अब अपने बच्चों की पढ़ाई पूरी करने में जुटी हैं। 15 साल की बेटी और 8 साल के बेटे में अब उनकी सारी दुनिया सिमट कर रह गई है।

गौर कीजिए

बिहार में असंगठित क्षेत्र की बहुसंख्य महिलाएं पेशागत स्वास्थ्य परेशानियों से ग्रस्त हैं।

सराहनीय

आस–पास होकर भी दूर हैं ये कामगार

रोज 9 घंटे का काम और बदले में 300 रुपये मेहनताना। पटना के मखदुमपुर की रहने वाली गीता देवी एक निर्माण मजदूर हैं। जिस बिल्डिंग के निर्माण कार्य में वे अभी लगी हैं वहां उनके अलावा सिर्फ एक और महिला मजदूर है, बाकी 20 पुरुष हैं। गीता कहती हैं कि उन्हें डर नहीं लगता क्योंकि आज तक अपनी सुरक्षा वे खुद ही करती आई हैं। हालांकि वे नहीं चाहतीं कि उनकी तीनों बेटियों को कभी मजदूरी करनी पड़े। किराये के कच्चे मकान में रहने वाली गीता बीपीएल से आती हैं लेकिन न तो उनके पास कार्ड है और न ही आज तक कोई लाभ मिला।

50 साल की अनरसा विधवा हैं और सब्जी बेचकर अपना गुजारा कर रही हैं। दो बच्चे हैं लेकिन दोनों बिहार के बाहर रह रहे हैं। अपने कच्चे मकान में अकेले रह रहीं अनरसा को रोज 250–400 रुपये तक की आमदनी हो जाती है। घर में न तो बिजली की सुविधा है न ही पानी की। बीपीएल श्रेणी से हैं लेकिन आज तक कोई लाभ नहीं मिला न ही किसी योजना के बारे में जानकारी है। सब्जी बेचने के काम में भी वसूली और अतिक्रमण विरोधी अभियानों का सामना करना पड़ता है। लेकिन अब अनरसा को डर नहीं लगता कहती हैं ''अब तो आदत हो गई है।''

राजीवनगर के पास सड़क पर मछली बेचने का काम करने वाली मंजू देवी भी किराये के मकान में रहती हैं और बिजली, शौचालय और हैंड पंप का इस्तेमाल करती हैं। हर रोज मछली बेचकर वो 250–300 रुपये तक कमा लेती हैं। दिन के करीब 10 से 12 घंटे काम करने के बाद भी इतनी कम आमदनी से वे संतुष्ट नहीं हैं। बीपीएल परिवार से हैं लेकिन अब तक कोई सरकारी लाभ नहीं मिल पाया है इन्हें। मंजू कहती हैं कि यहां बाजार में बैठना भी बहुत जोखिम का काम है। कई तरह के लोग आते हैं जिससे महिलाओं का हमेशा डर लगा रहता है।

करीब 25 साल की मुन्नी देवी भी असंगठित सेक्टर का एक चेहरा हैं और भवन निर्माण के काम में लगी हैं। उन्होंने शादी के बाद यह काम शुरू किया और अपने पति के साथ ही मजदूरी करती हैं। मुन्नी कहती हैं कि उनके दो बच्चे हैं और एक व्यक्ति की कमाई से घर का खर्च नहीं चल पाता था इसलिए उन्हें भी मजदूरी करनी पड़ी। चूंकि वे पति के साथ ही काम करती हैं इसलिए असुरक्षा महसूस नहीं होती है। लेकिन मानती हैं कि महिलाओं के लिए मजदूर का काम करना बहुत मुश्किल है। किराये के मकान में रहती हैं और बच्चों को मजदूर नहीं बनाना चाहती हैं।

विकलांगता को कभी बाधक नहीं माना

छह माह की उम्र में ही पोलियो ने अपना शिकार बना लिया। बायां पैर तब से लाचार है। लगा जैसे किस्मत ने मुंह मोड़ लिया। लेकिन विनीता के हौसले ने हार नहीं मानी और किस्मत को अपना साथ देने पर मजबूर कर दिया। आज राज्य महिला आयोग में काम कर रहीं विनीता ने दरभंगा से फाइन आर्ट किया और ग्रेजुएशन तक की पढ़ाई पूरी की। मां–बाप ने आर्थिक तंगी के बाद भी बेटी को पढ़ाने में कसर नहीं रखी तो बेटी ने भी मां–बाप के सपनों का मान रखा। शादी का समय आया तो सारे रिश्तेदारों ने विनीता की अपंगता और घर के हालात को देखते हुए साथ छोड़ दिया। ऐसे में आगे आए पेशे से फोटोग्राफर रंजन राही जिन्होंने विनीता को जीवनसंगिनी बनाने का बड़ा लेकिन मजबूत फैसला लिया। शादी के बाद रंजन ने विनीता का साथ हर मोड़ पर दिया जिसके बाद विनीता ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

विनीता बताती हैं कि वर्ष 2002 में राज्य महिला आयोग में संविदा पर उनकी बहाली हुई। इससे पहले 1988 में जब वे दसवीं में थीं तो दसवीं के ही बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर अपना खर्च खुद उठाती थीं। शादी के बाद पति का साथ देने के लिए सिलाई की, बुटिक चलाया और अंत में अपना एक एनजीओ भी खोला जिसके जरिये वे आज कई महिलाओं को रोजगार दे पाने में समर्थ हैं। पोलियो के कारण होने वाली परेशानी के बारे में पूछने पर विनीता कहती हैं '' कभी बड़ा आइना देखना नहीं चाहती हूं क्योंकि सिर्फ वही मुझे झुक कर चलने का अहसास दिलाता है।''

गौर कीजिए

35 साल की उम्र तक मातृ मृत्यु दर बिहार में महिलाओं की मृत्यु का एक प्रमुख कारण है।

सराहनीय

अकेले ही शुरू किया काम

उनका बच्चा जब केवल तीन साल का था तब पति छोड़कर चले गए। अबोध बच्चे के मासूम सवालों का कोई उत्तर नहीं था उनके पास। अभी–अभी शुरू हुई गृहस्थी एक झटका खाकर रुक गई लेकिन, अनीता नहीं रुकीं। वो चलती रहीं। अपने बच्चे की परवरिश के लिए उन्होंने नई राह पकड़ी। साल 2001 में टिफिन सर्विस की शुरुआत की। खुद खाना बनाकर होस्टल में रहने वाले छात्रों के पास टिफिन भिजवाना शुरू किया। पंद्रह साल पहले शुरू हुई यह यात्रा आज भी जारी है, अनवरत।

अनीता जी खुद का काम करने वाली महिलाओं के लिए एक मिसाल हैं। मुजफ्फरपुर में जन्मीं और वहीं से पढ़ी–लिखी अनीता ने अपनी कहानी सुनाते हुए बताया कि पति के अचानक घर छोड़कर चले जाने के बाद वो टूट–सी गई थीं। कुछ समझ में नहीं आ रहा था, लोगों ने मायके चले जाने की सलाह दी मगर उन्होंने अपने दिल की सुनी। मायके नहीं गई और परिस्थिति का सामना खुद करने का फैसला लिया। खाना बनाकर टिफिन भेजना शुरू किया। छात्रों और अन्य ग्राहकों को स्वाद पसंद आने लगा तो काम चल पड़ा। कहती हैं कि आज चार–चार स्टाफ हैं फिर भी सब्जी मैं अपने हाथ से ही बनाती हूं। अब तो खाना पहुंचाने के लिए भी स्टाफ को रख लिया है। बेटा बड़ा हो गया है और अपनी पढ़ाई पूरी कर रहा है। सरकार से किसी तरह की सहायता अब तक नहीं मिली है।

गार्ड की चुनौती भी स्वीकारी

पटना के एक मॉल में गार्ड का काम करती हैं सीमा (नाम बदला हुआ)। एक ऐसा काम जो पुरुषों के नाम से ही जाना जाता था। लेकिन अब इसमें भी महिलाओं ने अपना दखल दे दिया है। सुबह के दस बजे से लेकर रात के दस बजे तक की लगातार ड्यूटी और इस दौरान न एक पल का आराम और न ही काम से ब्रेक। 45 मिनट के लंच टाइम में ही बैठने की छूट मिलती है वरना पूरे दिन एक मिनट भी बैठने की आजादी नहीं। सीमा कहती हैं कि साथी पुरुष गार्डों से तो कोई परेशानी नहीं होती लेकिन मॉल में आने वाले पुरुष कई बार गलत नजरों से देखते हैं। इसके अलावा यहां से मिलने वाला पारिश्रमिक भी इतना नहीं है कि परिवार का पूरा खर्च उठा सकें। दरअसल देश में मॉल के बढ़ते चलन के कारण वहां महिला गार्डों को रखना जरूरत बन गई है। ज्यादातर गार्डों की तैनाती मॉलों में ही की जाती है और उन्हें महिला ग्राहकों की जांच का जिम्मा सौंपा जाता है।

70 की उम्र में भी काम कर रही हैं राजेश्वरी

70 साल की राजेश्वरी देवी के हाथों के बने बड़ी–अचार आज भी कई घरों में भोजन का स्वाद बढ़ा रहे हैं। उम्र हो गई तो क्या उनके हाथों के स्वाद में कोई फर्क नहीं पड़ा है। पिछले कई सालों से वे दूसरों के घरों के लिए बड़ी, पापड़, अचार, मुरब्बे और नमकीन, गुझिया आदि बनाने का काम कर रही हैं। इतना ही नहीं शहर के कई नामी–गिरामी स्कूलों में नाश्ते के पैकेट तैयार करने का काम भी वे संभालती हैं। इतनी उम्र हो जाने के बाद भी ये काम करने में तकलीफ नहीं होती, पूछने पर कहती हैं कि तकलीफ कैसी, ये तो मेरा शौक है। उनके पिता मिठाई का बिजनेस करते थे, वहीं से देखते–देखते उन्होंने भी सभी तरह की मिठाई बनाना सीख लिया। फिर शादी के बाद ऑर्डर मिलने पर काम लेने लगीं और घर–घर जाकर मिठाइयां और नमकीन बनाने लगीं। अपना सारा काम वे खुद देखती हैं। बीच में किसी दलाल या बिचौलिये को नहीं आने देती हैं इसलिए काम और पारिश्रमिक दोनों पर नियंत्रण बना रहता है। राजेश्वरी बताती हैं कि परिवार में बेटा–बहू और पोता–पोती सब हैं इसलिए अब दिक्कत नहीं होती है। सबलोग मेरे काम में मेरा सहयोग करते हैं। वो बताती हैं उनके इस हुनर का सबसे अच्छा फल मिला पति की रिटायरमेंट के बाद। अपने लिए पैसे खुद कमाने और घर में योगदान देने में उन्हें काफी गर्व महसूस होता है। इतनी आयु हो जाने के बाद भी राजेश्वरी ऑटो या रिक्शा से अपने ग्राहकों के यहां जाती हैं और आर्डर की डिलीवरी खुद करती हैं। उन्हें देखकर लगता है कि नई पीढ़ी को उनसे सीख लेनी चाहिए। राजेश्वरी जी बताती हैं कि अब तो बच्चे बड़े हो गए हैं तो कोई तकलीफ नहीं होती है लेकिन जब वे छोटे थे तो बच्चों को लेकर ही काम पर जाना पड़ता था। हालांकि घर से काम कर लेने से परेशानी थोड़ी कम हो जाती थी। वो कहती हैं कि हमेशा अपने काम पर भरोसा किया। अपना काम करने वाली महिलाओं को मिलने वाली सरकारी सहायता, लोन या अन्य योजनाओं के बारे में राजेश्वरी जी को कोई जानकारी नहीं है और न ही कभी सरकार से किसी प्रकार की सहायता मिली।

संकलन : दीपिका झा व भव्या गौतम।

गौर कीजिए

बिहार में महिलाओं की जीवन प्रत्याशा पूरे भारत की तुलना में बहुत कम है।

विचार मंच

क्या कहते हैं जागरूक शहरी

हर गली–हर घर से एक स्त्री निकलती है और अपनी चेतना, दक्षता, हिम्मत और आत्मविश्वास के साथ कई लाख कामगारों की भीड़ में समा जाती है। मगर एक चीज जो उन्हें खोने नहीं देती और बार–बार भीड़ से बाहर धकेल देती है वो है –उनका स्त्रीत्व। उनके सीने में दबी ममता और संवेदनशीलता उनकी सबसे बड़ी ताकत है। फिर भी न जाने क्यों ये ताकत उनकी कमजोरी समझ ली जाती है। इस मुद्दे पर हमने शहर के अनुभवी लोगों की भी राय जानी :–

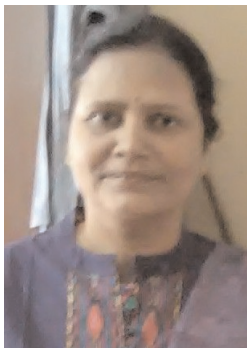

सुधा जी, निदेशक व सचिव, शक्तिवर्द्धिनी, पटना

सुधा जी उस समय अपने घर से बाहर निकलीं जबकि उनके घर की किसी और महिला ने घर से बाहर काम करना शुरू नहीं किया था। अपने घर में सबसे लाडली थीं और इसलिए उनके प्रति सबकी चिंता भी बहुत ज्यादा थी। लड़की होकर दिन–रात काम करना, समाज के लोगों के बीच जाना और उनकी मदद करना, कैसे कर पाएगी! लेकिन सुधा जी ने सबके मुंह पर ताला लगा दिया। शक्तिवर्द्धिनी से जुड़े अपने अनुभवों को साझा करते हुए सुधा जी कहती हैं कि महिलाओं को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वे बताती हैं कि एक मामले में एक विधवा को जिसकी कोई संतान भी नही थी, ससुराल वालों ने बेघर कर दिया और पति के हिस्से की संपत्ति और अधिकार देने से इंकार कर दिया था। ऐसे में शक्तिवर्द्धिनी ने उस महिला का साथ दिया और उसे उसका अधिकार वापस दिलवाया। उन्होंने कहा कि विधवा, परित्यक्ता और अकेली महिलाओं को कमजोर समझ कर लोग उनका फायदा उठाते हैं और ऐसा हर क्षेत्र में होता है चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक या राजनीतिक। महिलाओं के हक के लिए संघर्ष के दौरान उन्हें भी कमजोर समझ कर कई बार डराया और धमकाया गया लेकिन अपने सहयोगियों के साथ वे लगातार डटी रहीं। एक बार एक प्रेमी जोड़े को संरक्षण देने के दौरान उन्हें ऐसा ही अनुभव हुआ। लड़की के घर वालों ने उन्हें उठवा लेने और जान से मार देने तक की धमकी दी लेकिन फिर भी वे डरी नहीं। आज वो जोड़ा सुखी दांपत्य जीवन जी रहा है।

सुधा जी इस बात को शिद्दत से मानती हैं कि महिलाएं प्राकृतिक रूप से ज्यादा जिम्मेदार होती हैं। ऐसे में चाहे वे किसी भी पद या स्तर पर क्यों न हों अपनी परंपरागत जिम्मेदारियों को उन्हें निभाना ही पड़ता है और इसे वे भली–भांति संभालती भी हैं। आज के बदलते दौर में जरूरत है उनका साथ देने की। उनके कामों कों चाहे वे घर के भीतर सेवा कार्य कर कर रही हों या घर के बाहर नौकरी कर रही हों, अधिक मान्यता देने की जरूरत है। परिवार के स्तर पर ये शुरू हो तो नतीजे अच्छे हो सकते हैं।

मणिकांत ठाकुर, वरिष्ठ पत्रकार, पटना

ख्याति प्राप्त पत्रकार मणिकांत ठाकुर का लंबा समय समाज के बीच काम करते हुए बीता है। वे बताते हैं कि असंगठित क्षेत्र की महिलाएं जो निर्माण कार्य और ईंट भट्ठों में काम करती हैं हर रोज शोषण की शिकार होती हैं। न तो कोई संगठन और न ही पुलिस–प्रशासन इनकी मदद कर पाता है। श्री ठाकुर मानते हैं कि इन महिलाओं के सामने आर्थिक मजबूरी सबसे बड़ी समस्या है। ठेकेदार इनकी इसी मजबूरी का फायदा उठाते हैं और उनकी निरंकुशता तथा दवाब के आगे महिला मजदूरों को समर्पण कर देना पड़ता है। निराशाजनक तो ये है कि इन महिलाओं का शोषण कभी चर्चा का कारण नहीं बनता है। लोग इसे सामान्य घटना मानकर भुला देते हैं। दरअसल निम्न आर्थिक–सामाजिक वर्ग की महिलाओं के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपना और परिवार का पेट पालना होता है। ऐसे में दूसरा कोई विकल्प मौजूद न होने के कारण इन्हें हालात से समझौता करना पड़ता है। फिर न तो इनकी नाराजगी सामने आती है और न ही कोई विद्रोह दिखाई देता है। श्री ठाकुर मानते हैं कि असंगठित महिला मजदूरों के पक्ष में माहौल बनना जरूरी है ताकि वे भी अपने शोषण के खिलाफ निर्भय होकर विरोध दर्ज करा सकें।

जहां तक संगठित सेक्टर की महिला कर्मचारियों की बात है तो वे मानते हैं कि यहां भी वैसी महिलाएं निशाने पर होती हैं जो आर्थिक–सामाजिक हैसियत में अन्य महिलाओं से पिछड़ी होती हैं। अपेक्षाकृत बेहतर आर्थिक–सामाजिक स्तर की महिलाओं के साथ सभी स्तर के पुरुष अच्छा व्यवहार करते हैं और ऐसी महिलाओं की बात भी सुनी जाती है। इसके पीछे उक्त महिलाओं की आर्थिक सुरक्षा की भावना और उच्च नैतिक बल प्रमुख भूमिका निभाते हैं। वहीं जो महिलाएं आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत कम सुरक्षित होती हैं और जिनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि भी कमजोर होती है उनके प्रति हर स्तर के पुरुष का रवैया बदल जाता है। फिर चाहे वो अधिकारी हो या साधारण स्तर का कोई कर्मचारी। उन्हें मालूम होता है कि उक्त महिला उनका विरोध करने में सक्षम नहीं है। इसलिए मणिकांत मानते हैं कि महिलाओं का आर्थिक रूप से सबल होना सबसे जरूरी है। यह न केवल उन्हें वित्तीय सुरक्षा प्रदान करता है बल्कि उनके आत्मविश्वास को बढ़ाता है और अपने सम्मान के लिए विरोध करने का हौसला भी देता है। श्री ठाकुर मानते हैं कि अभी भी हमारे देश में अन्य देशों की तुलना में महिलाओं को लेकर पिछड़ापन है। अच्छे पद और वेतन वाली महिलाओं के खुले विचारों का भी अक्सर लोग गलत अर्थ निकाल लेते हैं और उनके साथ गलत तरीके से पेश आते हैं। ऐसी स्त्रियों को भी सतर्क रहने की जरूरत है। श्री ठाकुर मानते हैं कि हमारे देश में लोगों को अपनी मानसिकता बदलने की जरूरत है।

गौर कीजिए

उत्तराखंड में महिलाएं पुरुषों की तुलना में 9 फीसद कम पाती हैं जबकि बिहार में 63 फीसद तक कम वेतन पाती हैं।

विचार मंच

एनी मिश्रा, प्रोग्राम ऑफिसर, केयर इंडिया, पटना

''इसमें कोई शक नहीं कि घर में सहयोग मिले तभी कोई महिला बाहर जाकर काम कर सकती है लेकिन यही सहयोग अगर ऑफिस में भी मिले तो मुश्किलें काफी हद तक कम हो सकती हैं।'' ये मानना है अंतरराष्ट्रीय संगठन केयर इंडिया के पटना कार्यालय में कार्यरत प्रोग्राम अधिकारी एनी मिश्रा का। एनी ने अपने अनुभव से बताया कि दफ्तरों में महिलाओं की दक्षता नापने का काम भी कई बार पुरुष करने लगते हैं। यदि कोई महिला गर्भावस्था में भी काम करना चाहती है तो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से साथी कर्मचारी ये कहने लगते हैं कि ऐसी हालत में ऑफिस आने की क्या जरूरत है, घर बैठना चाहिए था न! इसी तरह जब एक बार महिला कर्मचारी मां बन जाती है तो उसके सामने सबसे बड़ी समस्या बच्चे की सुरक्षा की होती है। न वो उसे घर छोड़ सकती है और न ही उसे अपने साथ कार्यालय में ले जा सकती है। किसी हालात में यदि महिला को बच्चे को कार्यालय लाने की अनुमति मिल भी जाती है तो बहुधा साथी कर्मचारी इसे गैर प्रोफेशनल रवैया बताकर विरोध करने लगते हैं। ऐसे में एनी का सवाल है कि यदि मां अपने बच्चे की रक्षा नहीं करेगी तो कौन करेगा, फिर इससे दूसरे लोगों को क्या परेशानी हो सकती है।

विकास क्षेत्र में अपने कार्य अनुभव के आधार पर एनी ने माना कि यहां महिलाओं की सुरक्षा अन्य सेक्टरों की तुलना में अधिक है। कार्यालय में तय अवधि से अधिक का काम नहीं लिया जाता है और लिये जाने पर महिला कर्मी के सुरक्षित घर लौटने की पूरी व्यवस्था की जाती है। इसी तरह जो महिलाएं फील्ड में जाकर काम करती हैं उनकी सुरक्षा को भी प्राथमिकता देते हुए किसी विश्वसनीय पुरुष को उसके साथ भेजा जाता है। उन्होंने बताया कि समुदाय में लोगों तक बात पहुंचाने और जागरूकता लाने में पुरुषों की तुलना में पढ़ी–लिखी महिलाएं ज्यादा प्रभावी होती हैं। इसलिए महिलाओं को अत्यधिक तरजीह और सुरक्षा दी जानी चाहिए।

एनी ने कहा कि संगठित क्षेत्र में काम कर रही महिलाओं को भी कई बार अपनी प्रोन्नति और वेतन से समझौते करने पड़ते हैं। उन्होंने बताया कि कई योग्य और सक्षम महिलाएं केवल इसलिए प्रमोशन लेने से इंकार कर देती हैं कि इसकी वजह से उनका तबादला किया जा सकता है या कार्यक्षेत्र बदला जा सकता है और ऐसा होने पर उनका परिवार उपेक्षित हो सकता है। जाहिर है परिवार हमेशा से महिलाओं के लिए पहले नंबर पर रहा है चाहे वो किसी भी पद या काम से जुड़ी हों। एनी कहती हैं कि सेवा कार्यों में महिलाओं की भागीदारी और उनकी संवेदनशीलता को उनकी मजबूती न मान कर हमेशा उनकी कमजोरी माना जाता है और दफ्तरों में या निर्णय प्रक्रिया में उनकी बात को अनसुनी कर दिया जाता है। ज्यादातर फैसले पुरुष लेते हैं, यहां तक कि महिलाओं से जुड़े फैसले भी पुरुष लेते हैं जिन्हें न तो महिलाओं से जुड़ी परेशानियों का पता होता है और न ही औरतों की समस्याओं को जानने के लिए उतनी संवेदनशीलता होती है।

श्रुति सिंह, अधिवक्ता, पटना

पटना हाई कोर्ट में अधिवक्ता श्रुति सिंह बताती हैं कि अदालत में कई ऐसे मामले आते हैं जो कामकाजी महिलाओं के उत्पीड़न से जुड़े होते हैं। कार्यस्थलों पर तमाम प्रकार के उत्पीड़न और अन्याय से लड़ते–लड़ते जब महिलाएं विवश हो जाती हैं तो अदालत में गुहार लगाती हैं लेकिन यहां की व्यवस्था भी इतनी जटिल है कि पीड़िता को न्याय मिलते–मिलते काफी देर हो जाती है। हमारे देश की अदालतें मामलों को लंबित रखने के लिए पहले से ही मशहूर हैं और इसका सबसे बड़ा फायदा अभियुक्तों को होता है। श्रुति बताती हैं कि ऐसे ही एक मामले में पटना की एक शिक्षिका ने जब प्राचार्य के अभद्र बर्ताव और उसकी धांधलियों के बारे में अधिकारियों के पास शिकायत की तो उसकी जांच के लिए एक कमेटी का गठन किया गया। कमेटी ने अपनी जांच में शिक्षिका की शिकायत को सही पाया लेकिन फिर भी आरोपी शिक्षक पर कोई कार्रवाई नहीं की। नतीजतन शिक्षिका को थाने में अपनी शिकायत दर्ज करानी पड़ी। अब अदालत में शिक्षिका जंग लड़ रही है जबकि आरोपी खुलेआम घूम रहे हैं। श्रुति कहती हैं कि जब ऐसी व्यवस्था रहेगी तो महिलाएं किस विश्वास के साथ घर से बाहर निकल पाएंगी और अपने लिए रोजगार की तलाश कर पाएंगी। उनके सम्मान और सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं है। कानून और विधान हैं लेकिन एक तो उन तक पहुंचना आसान नहीं होता और उस पर से न्याय मिलने में देरी होने से पीड़िता का मनोबल भी कम हो जाता है। वर्ष 2014 में सुर्खियों में आई एक खबर के बारे में बताते हुए श्रुति कहती हैं कि बिहार के एक कस्तूरबा बालिका विद्यालय में जांच के दौरान अधिकतर छात्राएं गर्भवती पाई गई थीं। इस खुलासे से पूरे देश में सनसनी फैल गई थी। जांच के दौरान हॉस्टल की वॉर्डेन ने बताया कि स्कूल के प्राचार्य की हरकतों के बारे में उन्होंने कई बार शिकायत की थी लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई। जाहिर है कि ऐसी स्थितियों में न तो मां–बाप अपनी बेटियों को पढ़ने भेजेंगे और न ही उनके लिए नौकरी करने का मार्ग प्रशस्त होगा।

गौर कीजिए

महिलाओं और पुरुषों के बीच वेतन का अंतर औरतों की उम्र के साथ–साथ बढ़ता जाता है।

मंजरी

स्त्री के मन की

bansal TUTORIALS
FOR CLASS : VI, VII, VIII, IX, X, XI & XII, IIT-JEE (MAINS & ADVANCED) & MEDICAL ASPIRANTS

THE OFFSETTERS (INDIA) PRIVATE LIMITED
design, pre-press and color offset printing

Hospito India

Jeevak Heart Hospital

केनरा बैंक
Canara Bank
Together We Can

SAGE 50 YEARS

COMFED
PRIDE OF BIHAR
Sudha

आप हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है।

मुख्य संपादक
नीना श्रीवास्तव

© इक्विटी फाउंडेशन

Thought-provoking classic books which touches different facets of women in our society!

SAGE | 50 YEARS

Motherhood is a phenomenon of 'infinite variety' though, not infrequently, 'staled' by 'custom'

JANANI-MOTHERS, DAUGHTERS, MOTHERHOOD

Edited by **Rinki Bhattacharya**

Janani, or mother as the creator of life, defines this narrative collection. The book brings together autobiographical writings of women from many walks of life—noted authors, artists, academics—to share their experiences of being mothers, daughters, or both. The accounts combine memory and nostalgia in nuanced detail, making each narrative heart-warming and, at times, profoundly challenging.

The Janani stories vividly explore the whole gamut of motherhood. Immensely readable, the volume has a wide appeal —not just for mothers and daughters, but for fathers and sons as well; in fact, for all those who celebrate the rare gift of human relationships.

2013 • 212 Pages • Paperback: ₹ 295.00 (978-81-321-1134-4)

Any traditional custom that places women in subordinate positions within society or in the family has the potential to turn violent.

BEHIND CLOSED DOORS

Domestic Violence in India

Edited by **Rinki Bhattacharya**

To be assaulted, abused and raped by someone as intimate as a husband, or lover, is the most degrading experience for a woman. Not recognized as 'real violence, abuse of this nature is experienced daily by countless women in every culture. Behind closed doors of family, custom, values, traditions that are taken for granted and never questioned-are muffled voices of terror and trauma, which do not reach beyond the threshold nor attract the attention of lawmakers of redress agents.

Edited by a renowned women's rights activist and a former victim of domestic violence, the book takes us inside these closed doors. It puts together the life stories of seventeen women from diverse culture, class, education and religious backgrounds in India who were victims of domestic violence. Apart from being a first person account, this powerful book is a tribute to the courage and determination of women who decided to break their silence. The book will inspire other victims of this 'hidden crime', to speak out, share their plight and change their fate.

2013 • 244 Pages • Paperback: ₹ 295.00 (978-81-321-1026-2)

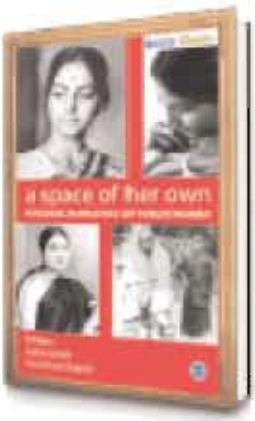

In a society where marriage means a girl leaving her natal family to join another family, this project represents a somewhat subversive voice.

A SPACE OF HER OWN

Personal Narratives of Twelve Women

Edited by **Leela Gulati** and **Jasodhara Bagchi**

Several books have been written about the position of women in India's patriarchal society. This collection of twelve narratives, however, focuses not so much on women's subservient position vis-à-vis men, but on women's relations with each other. With the authors locating their personal struggles within those of three generations of women in their families, these narratives span a period of over 100 years, and intersect both the private and public domains.

Reflecting on the emotional lines of matriliny within the social structure of patriliny, each narrative in A Space of Her Own is a tale of how the author fought to establish her own personhood and create a sphere of autonomy where she is able to make decisions to nurture herself and those around her.

2014 • 284 Pages • Paperback: ₹ 295.00 (978-81-321-1796-4)

Get an exclusive 20% discount!! Write to *marketing@sagepub.in* with code MANJARI2.

www.sagepub.in

Los Angeles • London • New Delhi • Singapore • Washington DC